जिसने बदली दिशा जगत् की,
धरती और आकाश की ।
जय बोलो ऋषि दयानन्द की,
जय सत्यार्थ प्रकाश की ।।

।। ओ३म् ।।

वर्ष - ५५ अंक - ६
मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १००) रु०
आजीवन - १०००) रु०
प्रतिमास ता० १३ को प्रकाशित

आर्य-संसार

जेष्ठ: सम्वत् २०७० वि० जून : २०१३

श्री जयनारायणजी पोद्दार

श्री जयनारायण पोद्दार :

श्री जयनारायणजी पोद्दार, पोद्दार परिवार के प्रथम व्यक्ति थे जो कलकत्ता पधारे । श्री जयनारायणजी का जन्म राजस्थानं में रामगढ़ में सन् १८५२ ई० में हुआ था । ये सन् १८९८ ई० में कलकत्ता आये । यहाँ ये ताराचन्द घनश्यामदास नामक प्रसिद्ध फर्म के मुनीम बनकर कार्य करने लगे । इतिहास के विभिन्न अंशों को देखने पर यह पता लगता है कि सन् १९०० ई० में इनके पुत्र श्री रामचन्द्रजी पोद्दार ने अपना कारबार शुरू कर दिया था । हम श्री जयनारायणजी के व्यावसायिक जीवन के सम्बन्ध में यहाँ कुछ न लिखकर उनके आर्य सामाजिक जीवन से सम्बन्धित पक्ष को ही लेते हैं ।

महात्मा कालूरामजी के सम्पर्क में :

श्री जयनारायणजी महात्मा कालूरामजी के सम्पर्क में आये । महात्मा कालूरामजी का नाम था श्री कालूरामजी तिवारी । जाति के ब्राह्मण, सिद्धान्तों में स्वामी दयानन्द के परम भक्त, कठोर आचार-विचार के विश्वासी, निष्ठा में बड़े-बड़े नामधारी सनातनधर्मियों से कहीं बढ़-चढ़ कर, महात्मा कालूरामजी थे । वे रामगढ़ में रहते थे । वे एक सद्गृहस्थ थे । शीघ्र ही उनकी पत्नी दिवंगत हो गयीं और फिर उन्होंने संन्यास ले लिया था । महात्मा कालूरामजी कुछ दिन कलकत्ता में भी रहे थे । किन्तु संन्यासी बनकर उन्होंने अपना स्थायी निवास रामगढ़ को ही बना लिया था । श्री जयनारायणजी पोद्दार इन्हीं महात्मा कालूरामजी के शिष्यों में से एक थे । महात्मा कालूरामजी के जीवन के सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि वे मधुर भाषी थे, विलक्षण तार्किक थे, व्यवहार चतुर और नीतिनिपुण थे । उनके सम्पर्क में आकर व्यक्ति उनके आकर्षण से उनका अपना बन जाने के लिए बाधित हो जाता था ।

श्री जयनारायणजी सन् १८९८ ई० में जब कलकत्ता आये, उस समय वे निष्ठावान् आर्यसमाजी बन चुके थे । त्याग की भावना भी थी और दान देने का मन भी था । श्री जयनारायणजी की आर्यसमाज के सिद्धान्तों में कट्टरतापूर्वक आस्था थी । उनके परिवार में दैनिक-सन्ध्या और अग्निहोत्र तभी से नियमित रूप से आरम्भ हो गया था । दैनन्दिन आचार-विचार में भी वे बड़े कट्टर थे । संस्कारों के प्रति कट्टरता उसी समय से आरम्भ हो गयी थी । पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म आदि संस्कारों को भी कट्टरता के साथ किया जाता रहा है । श्री जयनारायणजी का आर्यसमाज के प्रति सहयोग एक सर्वविदित बात थी । मारवाड़ी वैश्य अपनी सनातनधर्मी कट्टरता के लिये प्रसिद्ध हैं । उनमें श्री जयनारायणजी जैसा प्रभावशाली व्यक्ति आर्यसमाजी बन जाय और वह भी कट्टर, निष्ठावान, संस्कारप्रिय, दानशील, प्रचार कर्मों में अग्रसर रहने वाला, तो इन सबका एक स्वाभाविक पक्ष था कि मारवाड़ी समाज में मौन रूप से छिपे-छिपे कई लोग उनसे डाह करने लगे थे । श्री जयनारायणजी की आर्यसामाजिक निष्ठा का पता केवल आर्यसमाज के स्रोतों से नहीं मिलता बल्कि आर्यसमाज से बाहर भी उनका आर्यसमाज के प्रति सहयोग पर्याप्त चर्चा का विषय रहा है । अग्रवाल जाति के इतिहास से एक उद्धरण हमारी बात को अधिक सुस्पष्ट कर देता है ।[१]

''आर्य वैदिक धर्म के प्रचार में आप (श्री जयनारायणजी पोद्दार) बहुत सहायता पहुँचाते थे । आपने कलकत्ता स्थित आर्य कन्या विद्यालय का भवन बनाने के लिए पच्चीस हजार रुपये प्रदान किये । इसी प्रकार आर्यसमाज की संस्थाओं जैसे गुरुकुल कांगड़ी, गुरुकुल वृन्दावन इत्यादि को भी समय-समय पर ठोस सहायता पहुँचाते रहते थे ।''

मारवाड़ी समाज में विरोध की भावना :

श्री जयनारायणजी कुशल व्यवसायी, प्रतिभाशाली व्यवस्थापक और कट्टर आर्यसमाजी थे । ये सब ऐसे सुयोग थे जो प्रायः दुर्लभ से ही होते हैं । महात्मा कालूरामजी के सम्पर्क से स्वाध्याय का विकास हुआ, तार्किकता के सामने कट्टरपंथी मारवाड़ी कभी ठहर न पाते थे । उधर श्री जयनारायणजी थे कि सारे परिवार में सदाचार, सद्विचार, सात्विकता का बोलबाला था । परिवार में नित्य अग्निहोत्र होता था, जो उस समय वैश्य तो क्या बड़े-बड़े पंडितों के घर भी कम ही होता था । परिवार के सारे सदस्य सन्ध्या करते थे । बिना सन्ध्या किये कोई प्रातःकाल का जलपान

१ . श्री बालचन्दजी मोदी—अग्रवाल जाति का इतिहास—पृ० २३०

(शेष पृष्ठ २७ पर)

ओ३म्

आर्य-संसार

वर्ष ५५ अंक — ६

जेष्ठ-२०७० वि०

दयानन्दाब्द १८९

सृष्टि सं० १,९६,०८,५३,११४

जून— २०१३

मूल्य : एक प्रति १० रुपये
वार्षिक : १०० रुपये
आजीवन : १००० रुपये

सम्पादक :
प्रो० उमाकान्त उपाध्याय,
एम. ए.

सहसम्पादक :
श्री राजेन्द्र प्रसाद जायसवाल
सहयोगी संपादक :
श्रीमती सरोजिनी शुक्ला
श्री सत्य प्रकाश जायसवाल
पं० योगेश राज उपाध्याय

इस अंक की प्रस्तुति

१. आर्य समाज की गतिविधियाँ		२
२. इस अंक की प्रस्तुति		३
३. जीवन की पद्धति		४
४. महर्षि वचन सुधा-२२	-प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	७
५. मानव का वरणीय संस्कृति	-प्रो० उमाकान्त उपाध्याय	९
६. वेद विषयक मेरा लेखन कार्य	-डॉ० भवानीलाल भारतीय	१२
७.आर्य समाज बड़ाबाजार, कोलकाता के १०६वें वार्षिकोत्सव पर नगर के विशिष्ट आर्यजनों की शनिवार ४ मई २०१३ को सम्पन्न एक औपचारिक बैठक की रिपोर्ट	-श्री चान्दरतन दमानी	१५
८.अग्नि और जल यही दो सृष्टि के मौलिक तत्व हैं।	-श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'	१७
९. अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति	-प्रो० ओम कुमार आर्य	२०
१०.बोलना सिखाया जिसने, अब उनसे ही बोलते नहीं	-श्री देवनारायण भारद्वाज	२३

आर्य समाज कलकत्ता

१९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६, दूरभाष : २२४१-३४३९

email : aryasamajkolkata@gmail.com

'आर्य संसार' में प्रकाशित लेखों का उत्तरदायित्व सम्बन्धित लेखकों पर है।
किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय क्षेत्र कोलकाता ही होगा।

जीवन की पद्धति

अह्रुतमसि हविर्धानं दृंहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपति ह्वार्षीत् ।

विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतं रक्षो यच्छन्तां पञ्च ।। यजु० १-९

शब्दार्थ :–

अह्रुतम्	=	अकुटिल- सरल	विष्णुः	=	व्यापक प्रभु
असि	=	हो, है	त्वा	=	तुमको
हविर्धानम्	=	हवि, आहुति का स्थान, शरीर-जीवन	क्रमताम्	=	अग्रसर करें
			उरु	=	अधिक-विशाल
दृंहस्व	=	दृढ़, सिद्ध, समृद्ध करो	वाताय	=	गति, गमन के लिए
मा ह्वाः	=	कुटिलता से पृथक्	अपहतम्	=	समाप्त, नष्ट करें
मा ते यज्ञपतिः	=	तुम्हारा यज्ञपति भी नहीं	रक्षः	=	राक्षस
ह्वार्षीत्	=	कुटिल आचरण (न) करे	यच्छन्ताम्	=	देवें
			पञ्च	=	पाँच

भावार्थ :- हे मनुष्य ! तुम कुटिलता से रहित हो । तुम्हारा आहुति का स्थान, यज्ञ-कुण्ड तुम्हारा जीवन, तुम्हारा शरीर है । उसे समृद्ध करो । तुम्हारा यज्ञपति कुटिलता रहित हो । पाँच ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण चतुष्टय और शरीर , ये पांच, इनके द्वारा भगवान् विष्णु महान् उपलब्धि के लिए तुम्हें अग्रसर करें, राक्षसों से तुम्हारी रक्षा करें ।

व्याखान विन्दु :

१. जीवन में निष्कपटता-सरलता का महत्व ।
२. जीवन की यज्ञ वेदी में शुभ अशुभ चिन्तन, संकल्प, कर्म की आहुतियाँ ।
३. यज्ञ रूपी जीवन समृद्ध-पवित्र हो ।
४. जीवन के राक्षस, पतन के मार्ग ।
५. भगवान् विष्णु पाँचों के द्वारा कैसे रक्षा करते हैं ?

व्याख्या

प्रस्तुत मन्त्र में सफल जीवन जीने की पद्धति का वर्णन है । एक प्रसिद्ध भजन की पंक्तियाँ हैं-

''मानुष जन्म अमोल रे, माटी से मत तोल रे ।
अबकी मिला है, फिर न मिलेगा, फिर न मिलेगा ।।''

इस पद का भाव यह है कि सभी जीवधारी प्राणियों में मनुष्य का जन्म, मानव-योनि सर्वश्रेष्ठ है। इसी योनि में साधना करने, आध्यात्मिक उन्नति करने का सुयोग मिलता है । यदि इस योनि में अच्छे, उन्नतिशील कर्म न किए गये, तो अगला जन्म हीन- योनि, पशु आदि में हो सकता है ।

कम लोग यह ध्यान रखते हैं कि जीवन को उचित रीति से जिया जाय ।

जीवन जीने को तो सभी जीते हैं-''काकोऽपि-जीवति चिराय बलिं च भुंक्ते ।'' कौवे का जीवन कोई जीवन नहीं है, दूसरे का थूक, खंखार खा लेता हैं, किसी ने टुकड़ा फेंका तो दौड़कर अपनी चोंच भर लेता है , यह कोई जीवन नहीं है । मन्त्र कहता है कि हमारा जीवन उन्नत एवं सम्पन्न हो, अकुटिल, सरल हो और हम अपने जीवन की उपलब्धियों को संसार के कल्याण में यज्ञ-भाव से आहुति दे दें । हमारे जीवन में सरलता हो । मनसा, वाचा, कर्मणा, हमारा जीवन कुटिलता रहित हो । मनसा अकुटिल होने का अर्थ है कि हमारे जीवन में मन से भी कोई संकल्प या चिन्तन किसी के अहित के लिये न हो । जब मनुष्य मानसिक रूप से अकुटिल हो जाता है तो उसकी वाणी में कुटिलता आयेगी ही नहीं । वह जो कुछ भी बोलेगा दूसरे के कल्याण के लिये ही बोलेगा । जब हम मन और वाणी से कुटिलता रहित परहितकारी हो जायेंगे तो हमारे मन, वचन, कर्म में सदा ही दूसरों का हित बसेगा । हम न किसी का अहित सोचेंगे, न अहित करेंगे ।

हमारा जीवन एक यज्ञ है और यदि हम जीवन को यज्ञकुण्ड मान लें, तो उसमें सात्विक आहुतियाँ पड़नी चाहिये । आहुतियाँ भी अकुटिल और सात्विक तब होंगी जब इस जीवन रूपी यज्ञ का पालक स्वामी जीवात्मा स्वयं अकुटिल होगा । जो जीवात्मा देव प्रकृति के हैं, सरल हैं, सात्विक हैं, अकुटिल हैं , उनका जीवन भी सरल, सात्विक यज्ञ से सम्पन्न होता है । वेद कहते हैं यह पुरुष क्रतु है ''क्रतु मयोऽयं पुरुषः ।'' जीवन यज्ञ देवता और राक्षस दोनों करते हैं। देवताओं की आहुतियाँ घी, औषधि, मिष्ट पदार्थ, मेवे आदि की होती हैं, और राक्षस अपने यज्ञों में अमेध्य, चर्बी, मांस आदि की आहुति देते हैं । चाहे सात्विक यज्ञ हों और चाहे राक्षसी यज्ञ हों, यज्ञों में साधन-सुविधायें, यज्ञ के उपकरण होते हैं । यज्ञपति आत्मा चाहे देव या मनुष्य हो, या फिर राक्षस हो, उसके तीन प्रकार के सहयोगी उपकरण होते हैं। (१) ज्ञानेन्द्रियां (२) कर्मेन्द्रियाँ और (३) अन्तःकरण चतुष्टय--मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार । ये सब मिलकर मनुष्य का शरीर बनाते हैं, और इसी से जीवन यज्ञ चलता है। मन्त्र में कहा है कि हमारा यज्ञ-कुण्ड हमारा जीवन दृढ़, समृद्ध और समर्थ हो । उसमें किसी प्रकार की कुटिलता न आवे । जब हमारी ज्ञान-इन्द्रियां और अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त आदि सात्विक होते हैं तो हमारा यज्ञ सात्विक होता है । भगवान विष्णु से प्रार्थना करते हैं कि हमारे यह सब पांच-पांच के उपकरण प्रगतिशील और हमारे जीवन को विकसित, अग्रसर करें ।

जब हम जीवन में आगे बढ़ते हैं तो हमारे भीतर बैठे हुए काम क्रोध आदि राक्षस हमारे यज्ञ को अपवित्र करते हैं, यज्ञ को विध्वंस करते हैं । महर्षि विश्वामित्र यज्ञ कर रहे थे और मारीच आदि राक्षस उसमें रक्त-मांस डालकर उसे अपवित्र कर रहे थे । श्री रामचन्द्र ने इन राक्षसों को मारकर विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी । श्री रामचन्द्र ने प्रतिज्ञा की थी-

''निश्चरहीन करौं महि, भुज उठाय प्रन कीन्ह ।''

हमारे अपने जीवन में, जीवन रूपी यज्ञ में काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जब तामसी हो जाते हैं तो राक्षसों की तरह हमारे जीवन यज्ञ को अपवित्र कर देते हैं, भ्रष्ट कर देते हैं । हम विष्णु भगवान् से

प्रार्थना करते हैं कि हे प्रभो ! हमारे जीवन के इन राक्षसों से हमारी रक्षा करो और हमारे काम, क्रोध आदि मनोवेग देव बनकर हमारे जीवन रूपी यज्ञ को अग्रसर करें और हम रावण या कंस न बनकर राम और कृष्ण बनें और अपने जीवन को संसार के कल्याण में लगा दें । परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना आदि करने से हमारे काम, क्रोध आदि मनोविकार सात्विकता की ओर मुड़ जाते हैं और हमारी रक्षा हो जाती है ।

भगवान की रक्षा :–

हमने ऊपर यह देखा है कि हमारी ज्ञानेन्द्रियां और हमारे मन, बुद्धि और चित्त कर्मेन्द्रियों से अच्छे काम भी ले सकते हैं और बुरे काम भी ले सकते हैं । हमारे अच्छे कार्य देव कार्य हैं और हमारे बुरे कार्य धोखा, बईमानी मक्कारी आदि राक्षस कार्य हैं ।

स्वामी शंकराचार्य ने कहा है–

के शत्रव: सन्ति निजेन्द्रियाणि ।

तान्येव मित्राणि जितानि यानि ।।

हम जब अपनी इन्द्रियों को संयमित कर लेते हैं तों वे हमारी मित्र बन जाती हैं और जब हम इन्द्रियों के वश में हो जाते हैं तो वे हमें कुपथ गामी बना देती हैं ।

भगवान् ने हमारे आत्मा में बड़ी सात्विक शक्ति दी है । स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि **मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला होता है । किन्तु अपने हठ, दुराग्रह और स्वार्थ के कारण अपने झूठ को भी सच और दूसरों के सच को भी झूठ बनाता है ।** जब हम परमात्मा की शरण में समर्पित हो जाते हैं तो प्रभु हमारे आत्मा में प्रकाश देकर हमारी रक्षा करते हैं । प्रभु की रक्षा करने का यह मार्ग सबके लिए सुलभ है ।

–साभार–वेद वीथिका

आर्य समाज कलकत्ता की गतिविधियाँ

आर्य समाज कलकत्ता, १९, विधान सरणी, कोलकाता-७०० ००६

साधारण सभा का वार्षिक अधिवेशन

आर्य समाज कलकत्ता के साधारण सभा का वार्षिक अधिवेशन रविवार दिनांक ७-७-२०१३ को प्रात: १०.३० बजे से आर्य समाज मन्दिर, १९, विधान सरणी, कोलकाता-६ के सभागार में होगा ।

सभी सदस्यों की उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है ।

विचारणीय विषय :–१. गत साधारण सभा के अधिवेशन की कार्यवाही की सम्पुष्टि ।

२. आर्यसमाज कलकत्ता तथा सम्बन्धित विभागों—आर्य महिला-शिक्षा मण्डल ट्रस्ट, आर्य कन्या महाविद्यालय, महर्षि दयानन्द कन्या विद्यालय, रघुमल आर्य विद्यालय, आर्य स्त्री समाज कलकत्ता, आर्य युवा शाखा, आर्य विद्यालय ट्रस्ट, वैदिक अनुसंधान ट्रस्ट आदि के वार्षिक विवरण और आय-व्यय लेखा सुनना ।

३. अन्तरंग सभा द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पर विचार

४ वर्ष २०१२—२०१३ का हिसाब पास करना

५. आगामी वर्ष के लिए पदाधिकारियों व अन्तरंग सभा के सदस्यों का निर्वाचन.।

६. आगामी वर्ष का आनुमानिक आय-व्यय बजट की स्वीकृति ।

७. विविध विषय—प्रधान जी अनमति स ।

मन्त्री : **सत्यप्रकाश जायसवाल**

''महर्षि वचनसुधा'' – २२

–प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

''प्रश्न–सृष्टि-विषय में वेदादि-शास्त्रों का अविरोध है, वा विरोध ?

उत्तर–अविरोध है ।

प्रश्न–जो अविरोध है तो–

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः ।

वायोरग्निः । अग्नेरापः । अदभ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः ।

ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ।।''

सत्यार्थ० अष्टम समु०

यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन है ॥

उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश ''अवकाश अर्थात् जो कारणरूप है, वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं । क्योंकि बिना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सके ? आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य्य, वीर्य्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है ।

महाभारत के पश्चात् मीमांसा दर्शन के रचयिता जैमिनि मुनि के समय तक शास्त्रों में विरोध की बात नहीं होती थी । ऋषि-मुनियों ने यह समझाया था कि वेद, उपनिषद, दर्शन सभी ग्रन्थ ऋषियों-मुनियों के हैं अतः उनमें विरोध नहीं है, सामंजस्य है । समन्वय सामन्जस्य और विरोध अलग-अलग चीजें हैं। जब किसी प्रसंग को लेकर विद्वान् लोग अलग-अलग दृष्टिकोण से विचार करते हैं तो उनमें विरोध न होकर समन्वय सामंजस्य रहता है । इस संसार की सृष्टि, स्थिति और प्रलय यह एक विचारणीय, अन्वेषणीय विषय है । वेदों से लेकर मीमांसा तक सभी वेद, ब्राह्मण, उपनिषद, दर्शन शास्त्र आपस में अविरोधी हैं । उनमें समन्वय सामंजस्य तो है किन्तु विरोध नहीं ।

महाभारत के पश्चात् वेदों का पढ़ना-पढ़ाना कम होने लगा । वैदिक दृष्टिकोण वेद की शिक्षाएँ ऋषि मुनि के ग्रन्थों की अवहेलना होने लगी । विद्वान् अवैदिक दृष्टिकोणों को पढ़ने-पढ़ाने लगे । उसका परिणाम हुआ कि शास्त्रों में विरोध की बात उठने लगी ।

वेदों को कर्मकाण्ड का ग्रन्थ माना जाने लगा और उपनिषदों एवं दर्शनों पर साम्प्रदायिक रूप में विचार होने लगा । विद्वानों की निगाह से समन्वय सामंजस्य की भावना का अभाव हो गया । इसका फल यह निकला कि भारतवर्ष में जो छः प्रसिद्ध दर्शन हैं उन्हें आस्तिक और नास्तिक दर्शनों में बांट

दिया । महर्षि कपिल के सांख्य दर्शन को नास्तिक दर्शन कह दिया गया और वेदान्त तो हैं ही ब्रह्म की जिज्ञासा अतः कुछ दर्शन आस्तिक माने जाने लगे । यह विरोध की स्थिति बन गई । वस्तुतः विरोध किसी एक प्रश्न में एक दृष्टिकोण को लेकर होता है उदाहरण के लिए एक प्रश्न है कि क्या पृथिवी की आकृति गोल है या चपटी ? इस प्रश्न के कुछ लोग उत्तर देते हैं कि पृथिवी गेंद की तरह गोल है कुछ उत्तर देते हैं कि पृथिवी चटाई की तरह चपटी है । यह दोनों उत्तरों में विरोध है किन्तु जब एक विद्वान् कहता है कि पृथिवी अपनी धुरी पर घूमती रहती है और दिन रात होते रहते हैं और दूसरा यह कहता है कि पृथिवी अपनी परिधि पर वर्ष भर में एक चक्कर लगाती है और शीत उष्ण की ऋतुएँ होती हैं तो एक विद्वान् पृथिवी की दैनिक गति का और दूसरा वार्षिक गति का वर्णन कर रहा है तो इनमें दिन-रात और शीत, धूप की समस्याओं का समन्वय मूलक समाधान है, विरोध नहीं ।

इसी प्रकार गेहूँ की फसल उगायी जाती है, गेहूँ का बीज धरती में ढक दिया जाता है वह पौधा बनकर उगता है, फसल काटी जाती है, दाने अलग किये जाते हैं । उनको पीसकर आटा बनाकर, उसे सानकर रोटी बनाकर खाया जाता है, तो यह गेहूँ को धरती में गाड़ना, काटना, पीसना आदि दर्जनों कार्य विरोधी नहीं हैं । यह समन्वय सामंजस्य की बात बोल रहे हैं । इसी प्रकार छहों दर्शनों और वेद, उपनिषद आदि में सृष्टि की स्थिति प्रलय रचना को लेकर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है उनमें विरोध नहीं है । प्रकृति का लक्षण है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतो ऽहकारऽहङ्कारात्, पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुषं इति पञ्चविंशतिर्गणः ।।

यह संख्या सूत्र है ।।

(सत्त्व) शुद्ध (रजः) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है, उसका नाम 'प्रकृति' है । उससे 'महत्तत्व',बुद्धि, उससे 'अहंकार' , अहंकार से पांच 'तन्मात्रा' सूक्ष्म-भूत और दश इन्द्रियों तथा ग्यारहवां मन, पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पाँच भूत, ये चौबीस और पच्चीसवां 'पुरुष' अर्थात् जीव और परमेश्वर हैं । इनमें से प्रकृति अविकारिणी, और महतत्त्व, अहंकार तथा पांच सूक्ष्म-भूत प्रकृति का कार्य्य और इन्द्रियाँ, मन तथा स्थूलभूतों का कारण हैं । और पुरुष न किसी की प्रकृति, उपादानकारण और न किसी का कार्य्य है ।

इस उद्धरण में और पूर्व प्रश्न में उद्धृत तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । दोनों उद्धरणों में विरोध नहीं बल्कि समन्वय सामंजस्य है । एक में प्रकृति का लक्षण और मन आदि इन्द्रियों के बनने का विषय और दूसरे में आकाश आदि तथा अन्न से पुरुष के निर्माण का विषय है । अतः यह वर्णन विरोधी नहीं बल्कि परिपूरक है । यही स्थिति सभी शास्त्रों में है ।

ईशावास्यम्
पी-३०, कालिन्दी
कोलकाता-७०००८९

फोन (०३३) २५२२२६३६
चलभाष : ०९४३२३०१६०२

मानव की वरणीय संस्कृति

– प्रो० उमाकान्त उपाध्याय

आजकल 'संस्कृति' शब्द का बड़ा भ्रामक प्रयोग हो रहा है । यह प्रयोग-भ्रष्टता कब से चली, कहाँ से चली, यह तो समझ में में नहीं आया, किंतु इस समय 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' और `cultural programme' से यह समझा जाता है कि यहाँ संगीत, वाद्य. नाटक, नृत्य, कविता पाठ आदि का आयोजन हो रहा है । वस्तुतः संस्कृति मानव समाज के उत्थान का प्राण और मानवता के श्रेष्ठ गुणों का आत्मा है । मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक चरित्र का श्रेष्ठतम स्वरूप मानव संस्कृति है । परस्पर प्रेम, दया, करुणा, सहानुभूति आदि मानव संस्कृति के अभिन्न अंग हैं । सभ्यता और संस्कृति, दो शब्दों का युग्म, जोड़ा, प्रायः बोलचाल में प्रयोग में आता है । सभ्यता समाज का बाह्य रूप, शरीर के समान हैं । वस्त्र, पोशाक, भेष, घर, बागान, मकान, मार्ग—साड़ी, गाड़ी, बाड़ी, सभ्यता के अंग हैं और व्यक्ति और समाज की आंतरिक विशेषताएं संस्कृति है । इसीलिए सभ्यता समाज का बाह्य दर्शन, वाहिनी स्वरूप शरीर जैसा है और संस्कृति चरित्र के आंतरिक गुण प्रेम, स्नेह, दया, करुणा, द्वेष-हीनता, काम क्रोध, लोभ आदि से निवृति 'संस्कृति' के अंग हैं । यूरोप, पश्चिमी देशों की वर्तमान संस्कृति का आधार डार्विन का विकासवाद है । विकासवाद का मूल आधार है—'योग्यतम की जीत (survival of the fittest)।'अर्थात् जिसकी लाठी उसकी भैंस, बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, मनुष्यों का भी बलवान समुदाय निर्बल समुदायों पर अधिकार करके उनका शोषण करता है । साम्यवादी संस्कृति का आधार है 'वर्ग संघर्ष'—वर्गों का आपस में लड़ना और बलवान का जीतना । ये सब पशु संस्कृति है । इसका प्रचलन मनुष्य समाज को पशु बना देता है । इस समय तो भूमंडलीकरण और बहुराष्ट्रीय कंपनियों की नीति उपभोक्तावाद (consumerism) को पशुओं से बदतर बनाकर उपभोग को बढ़ाना हो गया है । उपभोक्ता मरे या जिये, लाल मांस, शराब, अंडे आदि के उपभोग को बढ़ावा दिया जा रहा है । यह मानवता के नाम पर कलंक है ।

इन सबसे पृथक भारतीय संस्कृति का एक वरेण्य स्वरूप वेद में मिलता है—

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषम् कृणोमि वः ;
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाध्न्या । —अथर्व० ३/३०/११ ।

वेद की वाणी में परमेश्वर ने मानव को उपदेश दिया है कि हम (परमेश्वर) तुम्हें सहृदय—सुख-दुःख में परस्पर सहानुभूति, सौमनस्य वाला (सुंदर मन वाला), द्वेष रहित बना रहे हैं । ऐ मानव! तुम एक-दूसरे को इतना प्यार करो, ऐसे प्यार करो जैसे गाय अपने तुरंत उत्पन्न हुए बच्चे को प्यार करती है । गाय का अपने बच्चे को प्यार करना, सो भी तुरंत उत्पन्न हुए बच्चे को प्यार करना, संसार के

निश्छल, निःस्वार्थ प्रेम का श्रेष्ठतम उदाहरण है । गाय और बछड़े का यही प्रेमपूर्ण व्यवहार मानव संस्कृति का, मानव समाज की संस्कृति का आधार है । मनुष्य समाज में कोई छोटा-बड़ा नहीं होता , न कोई जेष्ठ, न कोई कनिष्ठ, सभी अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिए भाई-भाइयों की तरह मिलकर प्रयत्नशील हों । वेद में कहा गया है—**'अज्येष्ठासो अकनिष्ठासः ऐते सं भ्रातरो वावृधुः सौभाग्याय।'** ऋग्वेद—५.६०.५ ।' मनुष्य समाज में तीन प्रकार का अभाव देखा जाता है (१) ज्ञान का अभाव, इसे जो दूर करने का व्रत ले वह ब्राह्मण ब्रह्म=ज्ञान । (२) न्याय का अभाव, इसे जो दूर करे वह क्षत्रिय (क्षत् =घाव, हानि) । (३) आलंबन पदार्थों का अभाव, भोजन, वस्त्र, आवास आदि । इन्हें समाज के लिए उत्पन्न करे तो वैश्य और (४) इन तीनों वर्गों की श्रम से सहायता करे तो वह शूद्र—आज की भाषा में चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी । भारतीय संस्कृति में मानवता के नाते सभी बराबर के मनुष्य हैं । परमेश्वर ने मानव जीवन को उत्थान समृद्धि, संपन्नता के लिये बनाया है । स्रष्टा अपनी सृष्टि को विपन्न नहीं देखना चाहता । परमेश्वर वेद में आश्वासन देते हैं—**'उद्यानम् ते नावयानं, जीवातुं ते दक्षतातुं कृणोमि'**—हे मानव ! तुम्हारा जीवन उन्नति के लिए है और तुम्हारे जीवन को दक्षता से संपन्न बना रहा हूँ । अवनति, विपन्नता मानव समाज की नियति नहीं है ।

ऋषि कहते हैं—**'भोगापवर्गार्थं दृश्यं'**—यह संसार परमेश्वर का दृश्य-काव्य है और वेद श्रव्य काव्य हैं । परमेश्वर ने इस संसार को भोगार्थ तथा अपवार्गार्थ (मोक्ष) बनाया है, बल्कि यों कहना चाहिए कि परमेश्वर ने भोग के द्वारा मोक्ष की साधना के लिए इस संसार को बनाया है । 'साधन धाम मोक्ष कर द्वारा ।' इस संसार का कैसे भोग किया जाये यह भी वैदिक संस्कृति बताती है—**'ईशा वास्यमिदं सर्वं, यत्किञ्च जगत्यां जगत्; तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्'**—यजु ४०/११ अर्थात् इस चलायमान संसार में जितने भी पदार्थ हैं, सबमें परमेश्वर का निवास है (वस=निवासे), सब परमेश्वर की छत्रछाया में हैं (वसु=आच्छादने) । भाव यह है कि संसार में सभी पदार्थ परमेश्वर की छाया में हैं और परमेश्वर ने कृपा पूर्वक प्राणियों को भोग करने के लिए दे दिया है । इस संसार का कैसे उपभोग किया जाये यह भी अपनी संस्कृति बताती है । कहा है—**'तेन त्येक्तेन भुञ्जीथा'**—इसलिए त्याग पूर्वक भोग करो । त्यागपूर्वक भोग में केवल उपभोग के द्वारा लाभ लेने की बात है, संचय करना स्वत्व जनाना, मालिक बनना आदि नहीं है । त्यागपूर्वक भोग का एक सुंदर उदाहरण है—रेलगाड़ी की यात्रा । रेलगाड़ी सुंदर है, डिब्बा भी सुंदर है, साथी, सहयात्री, सभी सुंदर, भले हैं, किंतु गंतव्य स्टेशन पर सबका त्याग करके उतर जाना त्यागपूर्वक भोग है । न गाड़ी अपनी है, न डिब्बा अपना है और न तो बाहर के सुंदर दृश्य अपने हैं, सबका त्याग ही अभीष्ट है—'किसकी रेलगाड़ी और कौन रेलगाड़ी का । **(त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा)** ।' यह भी आशय है कि **'तेन परमेश्वरेण त्यक्तेन प्रसादरूपेण प्रयुक्तेन भुञ्जीथा'** अर्थात् संसार के भोगों को परमेश्वर का प्रसाद मानकर भोग करे । जैसे प्रसाद में कोई आसक्ति या लोभ-लालच नहीं होता, उसी प्रकार संसारी पदार्थों में स्वत्व, आसक्ति नहीं रखनी चाहिए । संसार में स्वत्व, ममत्व, आसक्ति, अधिकार, मालिकाना की भावना ही संसार में अशांति, वैर और विपत्ति का कारण है । श्री

दिनकर जी ने ठीक ही कहा है—**'छीन-छीन जलथल की थाती, संस्कृति ने निज रूप समाया; विस्मय है, तो भी न शांति का दर्शन एक पलक को पाया।'** संचय, लोभ, परिग्रह की भावना ही मनुष्य को मनुष्य से, देश को देश से, राष्ट्र को राष्ट्र से अलग करती है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर अधिकार करने के लिए अस्त्रों-शस्त्रों का संग्रह करता है और संसार में विभिन्न देशों में युद्ध होते हैं, विश्वयुद्ध भी होते हैं।

भारतीय संस्कृति का उपदेश है—**'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्; मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।'** सभी प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें। यह मेरा है, यह मेरा नहीं है, दूसरे का है, यह स्वार्थी क्षुद्र दृष्टि है। **'उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।'** —उदार चरित्र पुरुषों के लिए संपूर्ण संसार एक कुटुंब है। **'तत्र विश्वं भवत्येक नीडं'**—सारा संसार एक परिवार है, प्राणी मात्र परमेश्वर की संतान है और परमेश्वर सबका पिता है, पालक है, रक्षक है।

ईशावास्यम्
फोन (०३३) २५२२२६३६ — पी-३०, कालिन्दी
चलभाष : ०९४३२३०१६०२ — कोलकाता-७०००८९

समाचार

वैदिक मिशन मुम्बई एवं संस्कृत अकादमी, दिल्ली के संयुक्त तत्वाधान में आर्य समाज सांताक्रुज में २२, २३, २४ मार्च २०१३ को अखिल भारतीय वैदिक संस्कृत सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस बृहद् कार्यक्रम की अध्यक्षता स्वामी प्रणवानन्द सरस्वती जी ने की तथा संचालन वैदिक मिशन मुम्बई के अध्यक्ष डा. सोमदेव शास्त्री जी ने किया। इस सम्मेलन में स्वामी धर्मानन्द जी, स्वामी धर्मेश्वरानन्द जी, स्वामी आर्यवेश जी, दिल्ली संस्कृत अकादमी के सचिव डा. धर्मेन्द्र कुमार तथा उपाध्यक्ष प्रो. शशिप्रभा कुमार जी, कवि कुलगुरू कालिदास की कुलपति प्रो. उमा वैद्य जी, सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश डा. मुकुन्द काम शर्मा आदि ने ऋग्वेद के अनेक सूक्तों पर अपने व्याख्यान दिए।

इसके अतिरिक्त भारत के कोने कोने से आये अनेक विद्वानों ने अपने भाषण दिए एवं अपने अपने शोध पत्र भी प्रस्तुत किए जिनमें से डा. महावीर मीमांसक, आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय, आचार्या सूर्यादेवी, डा. कमलेश शास्त्री, डा. मोक्षराज आदि प्रमुख थे। इस त्रिदिवसीय समारोह में डा. कैलाश जी कर्मठ ने अपने समधुर संगीत से श्रोताओं को मन्त्र मुग्ध कर दिया।

वैदिक मिशन मुम्बई के मन्त्री श्री संदीप आर्य ने अपने मिशन की विगत ८ वर्षों की प्रगति का विवरण सभा के समक्ष प्रस्तुत किया।

इस कार्यक्रम में मिशन की ओर से प्रकाशित 'यजुष-साम विमर्श' का विमोचन किया गया। अन्त में वैदिक वैदिक मिशन के अध्यक्ष डा. सोमदेव शास्त्री ने समस्त विद्वानों का आभार व्यक्त किया।

संदीप आर्य, मन्त्री–वैदिक मिशन मुम्बई

वेद विषयक मेरा लेखन कार्य

डॉ ० भवानीलाल भारतीय

वेदमंत्रों का उच्चारण बाल्यकाल में किया तो नहीं किन्तु सुना अवश्य । पारिवारिक धार्मिक कृत्य कराने वाले पंडित रामपाल व्यास नवरात्रों में सप्तशती पाठ तथा हवनादि कर्म कराते समय 'स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः' 'भद्रं कर्मेभिः शृणुयाम् देवाः' तथा 'द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति' आदि यजुर्वेद के मंत्रों का जब पाठ करते थे तो ये मंत्र हमारे कर्णकुहरों में प्रविष्ट होते तथा मंत्रों के प्रति हममें आकर्षण पैदा करते । वर्षों पश्चात् आर्य समाज के कर्मकाण्ड से जब परिचय हुआ तो इन मन्त्रों से परिचय अधिक प्रगाढ़ हुआ । मेरा शास्त्रीय अध्ययन स्वयं के परिश्रम का फल है । परिणामस्वरूप वेद, उपनिषद् दर्शन, गीता, रामायण, महाभारत, नीतिग्रन्थ, मन्वादि स्मृतियों का अध्ययन विद्वानों के भाष्य, टीका, व्याख्यादि की सहायता से किया । यह जब पल्लव ग्राही पाण्डित्य ही है ।

जब लेखन कर्म में प्रवृत्त हुआ तो वेद विषयक मेरे विभिन्न लेख पत्रों में प्रकाशित हुए । ऐसे विवेचनामूलक लेखों का प्रथम संग्रह 'वेदाध्यन के सोपान' शीर्षक से १९७४ के आर्य कुमार सभा किंग्स वे दिल्ली नें प्रकाशित किया । इसमें मेरे २० लेख छपे । इसमें प्रमुख थे— 'ऋषि दयानन्द की वेदार्थ शैली' 'वेदार्थ की यौगिक प्रक्रिया' 'वेद विषयक आचार्य कौत्स, प्रो. मैक्समूलर तथा करपात्री जी के विचारों की समीक्षा' आदि। वैदिक विषयों का सम्यक् अनुशीलन दयानन्द कृत ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के द्वारा किया जाता है । मैंने १९५० में 'भूमिका' की एक प्रति आर्य साहित्य मण्डल अजमेर से मात्र आठ में खरीदी थी जो साधारण कागज पर छपी थी । दयानन्द कृत 'भूमिका' का जब सायण की वेद भाष्य भूमिका से तुलनात्मक अध्ययन किया तो पता चला कि सायण की वेद मीमांसा पूर्व मीमांसा के कर्मकाण्डीय आधार को लेकर चलती है इसलिए वेदों के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान उससे नहीं होता । सायण की दृष्टि में वेदों का एकमात्र प्रयोजन याज्ञिक कर्मों का विधान करना है जबकि स्वामी दयानन्द वेदों को सर्व विद्याओं तथा ज्ञान विज्ञान का मूल उत्स मानते हैं । सायण और दयानन्द के वेद विषयक विचारों की तुलना में मेरे अनेक लेख उत्तम संग्रह में समाविष्ट हैं जो दोनों आचार्यों के विचारों को प्रस्तुत करते हैं । यह मेरा वेद विषयक प्रथम ग्रन्थ है ।

१९८० के अन्त में जब पंजाब विश्वविद्यालय की दयानन्द शोधपीठ के अध्यक्ष पद पर गया तो वेद विषयक शोध कार्य में गहराई से पैठने का अवसर मिला । साथ ही विभिन्न वेद गोष्ठियों, वेद सम्मेलनों, विचार परिषदों में सम्मिलित होने तथा ऑल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंसों के द्विवार्षिक सम्मेलनों में प्रतिनिधि रूप में जाने के अवसर मिले । १९८० से १९९१ तक की अवधि में प्राच्य विद्या सम्मेलनों के शान्ति निकेतन, जयपुर, अहमदाबाद, विशाखापटनम् तथा हरिद्वार अधिवेशनों में जो पत्र मैंने पढ़े उनमें वेद और राष्ट्रीय एकता, वैदिक साहित्य में प्रजातांत्रिक भावना, भारतीय नवजागरण के आन्दोलन और वेद, दयानन्द की वेद भाष्य पद्धति जैसे विषय विवेचित हुए थे । मॉरिशस के मोहनलाल मोहित जी की आर्थिक सहायता

से स्थापित दयानन्द वैदिक शोधपीठ के चण्डीगढ़, मुम्बई तथा अजमेर में सम्पन्न अधिवेशनों में जो लेख मैंने प्रस्तुत किए उनमें प्रमुख थे—वेदों का पुरुषार्थ प्रेरित यथार्थवाद, वेदों का सार्वभौम (सम्प्रदाय निरपेक्ष) स्वरूप, वेदों का सर्व विद्यामयत्व, वेदत्रयी और अथर्ववेद में वर्णित मनोवैज्ञानिक और शरीर शास्त्रीय संदर्भ आदि। ये सभी शोध निबन्ध आर्य प्रकाशन दिल्ली ने १९९२ में **'वैदिक स्वाध्याय'** शीर्षक ग्रन्थ में प्रकाशित किए।

१९९१ के मध्य में पंजाब विश्वविद्यालय की सेवा से मुक्त होने के पश्चात् मैंने सारा समय लेखन तथा धर्म प्रचार के लिए समर्पित किया। 'वैदिक मातृ भूमि वंदना' शीर्षक से अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के ६३ मंत्रों के पृथ्वी सूक्त की विशद व्याख्या लिखी जो १९९३ में प्रकाशित हुई। ध्यान रहे कि इस वैदिक सूक्त पर बीसियों विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाई है और धरती माता के गौरव को स्थापित किया है। वैदिक अध्ययन में प्रवेश करने में चारों वेदों के सौ-सौ मंत्रों के शतकों का अध्ययन उपयोगी हो सकता है। इस दृष्टि को आगे रखकर विगत में स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती, पंडित जगत् कुमार शास्त्री तथा स्वामी जगदीश्वरानन्द आदि ने चतुर्वेद शतकों का प्रणयन किया है। मेरे मन में जब इसी शैली के चार शतकों के लेखन का विचार आया तो मैंने मुख्यतः वेदों में आए उन आध्यात्मिक मंत्रों की व्याख्या लिखी जो ईश्वर, जीवात्मा, सृष्टि रचना, मोक्ष, मन, बुद्धि तथा निखिल मानवता के विचारों को व्यक्त करते हैं। पंजाब विश्व विद्यालय के अपने कार्यकाल में मैंने **'यजुर्वेद में अध्यात्म तत्त्व'** तथा **'याजुष सूक्ति समीक्षा'** इन दो विषयों पर शोध कार्य करवाए थे। 'यजुर्वेद में अध्यात्म' पर कार्य करने वाले डा. उमेश शास्त्री अभी इंग्लैंड में प्रचार कार्यरत हैं जबकि यजुर्वेद की सूक्तियों पर शोध कार्य करने वाले स्व. पंडित देवेन्द्रनाथ शास्त्री, शोध करते समय तब पचहत्तर वर्ष के थे। जब इस वयोवृद्ध पण्डित ने विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में शोध उपाधि लेने के लिए सभागार में प्रवेश किया तो उनकी वृद्धावस्था को देखकर बहुत देर तक करतल ध्वनि से उन्हें अभिनन्दित किया गया।

मैंने सर्वप्रथम यजुर्वेद के अध्यात्म परक सौ मंत्रों की व्याख्या लिखी जो हालैण्ड (रॉटरडम) निवासी आर्य पुरुष देवी प्रसाद भगवानदत्त तथा कतिपय अन्य दानशील व्यक्तियों के आर्थिक सहयोग से छपी। कालान्तर में इसी शैली पर अवशिष्ट तीन वेदों के सौ-सौ अध्यात्म प्रधान मंत्रों की व्याख्याएं लिखीं और यह आध्यात्मिक शतक माला गोविन्द राम हासानन्द ने प्रकाशित की। दिल्ली के गोविन्दराम हासानन्द के ही अनुरोध पर चारों वेदों की परिचय माला का लेखन किया और ये चारों ग्रन्थ वेदों का सरल परिचय शीर्षक ग्रन्थमाला में छपे। इनके दो संस्करण निकल चुके हैं। जब डी. ए. वी. प्रकाशन ने चारों वेदों के पंडित जयदेव शर्मा विद्यालंकार कृत भाषा भाष्य को छपाने का निश्चय किया तो इस कार्य के अधिष्ठाता श्री विश्वनाथ जी के आदेश से मैंने चारों वेदों के कार्य विषयों तथा तत् सम्बद्ध बातों पर चार परिचयात्मक लेख लिखे जो इन वेद भाष्यों की प्रस्तावना के रूप में छपे।

यों तो **'अनन्ता वै वेदाः'** की उक्ति के आधार पर वेद विषयक लेखन की कोई सीमा या इयत्ता नहीं है। तथापि २०१० की समाप्ति पर मेरा ग्रन्थ **'वैदिक कथाओं का सच'** प्रकाशित हुआ। इसमें वेदों में आए

इन व्याख्यानों की वास्तविकता का विचार किया गया है। जिन्हें भूल से लौकिक इतिहास समझा जाता है। इस वर्ष में मेरा वेद विषयक एक ग्रन्थ **'वैदिक अध्यात्मधारा'** का प्रकाशन हुआ। इसमें चारों वेदों में आए प्रमुख आध्यात्मिक संदर्भों का विवेचन हैं जिन्हें वेदों में वर्णित, ईश्वर, जीवात्मा, सृष्टि रचना जैसे आध्यात्मिक विचारों का स्रोत कहना चाहिए। सत्य तो यह है कि वेदाध्ययन के लिए एक जीवन ही पर्याप्त नहीं है। उपनिषद के कथनानुसार यदि हमें अनेक जन्म मिलें तब भी वेद की आराधना समाप्त होने वाली नहीं है।

८/४२३, नन्दनवन, जोधपुर

आर्य समाज कलकत्ता द्वारा संचालित विद्यालयों का वर्ष २०१३ का परीक्षाफल

आर्य कन्या महाविद्यालय, २०, विधान सरणी, कोलकाता-७००००६

१. माध्यमिक परीक्षा

कुल परीक्षार्थी १३७ उत्तीर्ण १११ उत्तीर्णता ८१%

सर्वोच्च प्राप्त अंक—**[illegible]** (६०४/७००=८६%)

२. उच्च माध्यमिक :-

कुल परीक्षार्थी २८६ उत्तीर्ण २४६ उत्तीर्णता ८६%

सर्वोच्च प्राप्तांक :— वाणिज्य विभाग—**[illegible]**—३९२/५००=७८%

विज्ञान विभाग—**[illegible]**—३५०/५००=७०%

कला विभाग—**[illegible]**—३७३/५००=७४%

३. [illegible]

कुल परीक्षार्थी—२५ उत्तीर्ण—२५ उत्तीर्णता—शत प्रतिशत

सर्वोच्च प्राप्तांक—**[illegible]** A +

रघुमल आर्य विद्यालय, ३३, शंकर घोष लेन, कोलकाता-६

१. माध्यमिक

कुल परीक्षार्थी—८२ उत्तीर्ण—६७ सर्वोच्च प्राप्तांक—५१०/७००—**[illegible]**

उत्तीर्णता ८१%

२. उच्च माध्यमिक :-

कुल परीक्षार्थी—१९० उत्तीर्ण—१३४ उत्तीर्णता—७०%

सर्वोच्च प्राप्तांक—**राहुल कुमार साव** ३५६/५०० (साइंस विभाग)

ओ३म्

आर्यसमाज बड़ाबाजार, कोलकाता के १०६वें वार्षिकोत्सव पर नगर के विशिष्ट आर्यजनों की शनिवार ४ मई २०१३ को सम्पन्न एंक औपचारिक बैठक की रिपोर्ट

युगप्रर्वतक महर्षि दयानन्द (१८२५—१८८३) ने अपने समय का सर्वश्रेष्ठ मानव हित चिन्तक होने का गौरव पाया था तथा १८८३ में उनके इस संसार से चले जाने के ६०/७० वर्षों तक भी न केवल भारत अपितु सारे विश्व के मनीषी चिन्तकों एवं निष्पक्ष विचारकों के मानसपट पर उनकी एवं उनके द्वारा संस्थापित आर्य समाज रूपी वाटिका के क्रिया-कलापों की गूँज व्याप रही थी किन्तु हाल के ४०/५० वर्षों में ज्यों ज्यों उसके उन्नयन का ग्राफ नीचे गिरता गया त्यों-त्यों मानवता को भी घोर संकटों का सामना करना पड़ रहा है। पर आश्चर्य है कि न तो दुनिया के अन्य लोग और न ही स्वयं आर्य समाज के अपने ही लोगों को इस बात की चिन्ता रह गयी है कि दयानन्द के महान् मिशन को अर्थात् आर्यसमाज की दिव्य विचारधारा को जो और कुछ नहीं, परिस्थितियों के अनुरूप मानव के समग्र कल्याण की सार्वभौम योजना है, पुनः विश्व के बुद्धिजीवियों के समक्ष पूरे वेग से प्रस्तुत की जाय—परन्तु हाल के ७/८ वर्षों में तो आर्य समाज की शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के ही तीन-तीन धड़े बन जाने से जिस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का सृजन हो गया है उस पर महानगर कोलकाता एवं बंगाल के विभिन्न क्रियाशील आर्य समाजों एवं आर्यजनों के मनो में तीव्र रोष व्याप्त हो रहा है—उसीकी अभिव्यक्ति देश भर के आर्यों एवं शीर्ष स्थानों पर बैठे सार्वदेशिक सभा के कथित कर्णधारों को भी हो सके तथा वे भी दयानन्द के महान् मिशन की रक्षा एवं उन्नयन के अपने कर्त्तव्य का बोध एवं निर्वहन करने हेतु आगे आवें इस हेतु ही कोलकाता के विशिष्ट आर्यजनों की एक सभा आर्य समाज बड़ाबाजार के सभागार में गत ४ मई शनिवार को वयोवृद्ध आर्यनेता श्री खुशहाल चन्द्र आर्य के सद् प्रयास से बुलाई गयी जिसमें नगर के विशिष्ट आर्यजनों के अतिरिक्त दिल्ली से पधारे श्री ब्र. राजसिंह आर्य ने भी भाग लिया। बैठक में अन्य लोगों के अलावा सर्वश्री दीनदयाल गुप्त, आनन्द कुमार आर्य, श्रीराम आर्य, सज्जन विन्दल, अरुण गुप्ता, आनन्द देव आर्य, नरेश गुप्ता, देवव्रत तिवारी, विवेक जायसवाल, घनश्याम मौर्य, खुशहालचन्द्र आर्य प्रभृति आर्यजन उपस्थित थे तथा अध्यक्षता चिन्तनशील समाजसेवी चान्दरतन दमानी ने की।

अध्यक्ष श्री दमानी ने सभा को बताया कि ६ वर्ष पूर्व २७-१०-२००७ को मित्रों की सलाह पर एक प्रस्ताव इ-मेल से उन्होंने सार्वदेशिक सभा के तीनों धड़ों को भेजा था कि उपयुक्त एवं निष्पक्ष प्रक्रिया अपनाई जाकर सार्वदेशिक सभा का न्याय संगत गठन हो सके इसके लिये आवश्यक यही है कि तीनों धड़े अपनी-अपनी अन्तरंग सभा तथा/अथवा साधारण सभा में इसआशय के प्रस्ताव ग्रहण करें कि वे इस हेतु आर्य समाज के पांच-पांच (या अधिक) विद्वानों या संन्यासियों को मकर्रर करते हैं और इस प्रकार तीनों सभाओं से प्राप्त १५ (या अधिक) व्यक्तियों की एक सर्वाधिकार सम्पन्न समिति बनेगी जो महर्षि दयानन्द के महान् मिशन के पूर्ण हित को ध्यान में रखकर सार्वदेशिक सभा के निर्वाचन की यथा सम्भव सही प्रक्रिया निर्धारित करेगी क्योंकि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्वाचन के पूर्व सारी प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के निर्वाचन कराने जरूरी हैं तथा प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के भी निर्वाचन के पूर्व इकाई आर्य समाजों के अस्तित्व का सही आकलन एवं उनके सही व स्वस्थ निर्वाचन की प्रक्रिया को भी तय करना जरूरी है, क्योंकि इस समय

जो प्रक्रिया तीनों धड़ों में बैठे लोग न्यायिक प्रक्रिया की आड़ में सार्वदेशिक सभा में अपनी पैठ बनाने हेतु अपना रहे हैं वह स्वस्थ एवं सही है भी या नहीं इसकी जांच प्रक्रिया भी प्रस्तावित सर्वाधिकार सम्पन्न समिति के दायरे में लाए बिना सम्भव नहीं है अन्यथा दयानन्द के मिशन के हितों की अनदेखी होती रहेगी । श्री राजसिंह जी एवं श्री आनन्द कुमार आर्यजी इस सूचना पर कि अब तक अधिकतर प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के निर्वाचन हो चुके हैं जिनमें तीनों में से किसी एक भी धड़े को कोई आपत्ति नहीं है पर इस पर अपनी टिप्पणी करते हुए अध्यक्ष श्री दमानी जी ने कहा कि तीनों धड़ों द्वारा मान्य प्रतिनिधि सभाओं की निर्वाचन प्रक्रिया भी ठीक रही हो यह आवश्यक नहीं है अत:उसकी भी जांच सर्वाधिकार सम्पन्न समिति के अन्तर्गत किये बिना उनको मान लेना भी भूल ही होगी । कुछ ऐसी ही बात हमारे बंग प्रान्त में भी है जहां दो प्रतिनिधि सभाएं बतायी जाती है पर उनमें में से एक भी कभी भी सही एवं स्वस्थ प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया है अत:ऐसे सभी मामलों की जांच होनी आवश्यक है और यह कार्य प्रस्तावित सर्वाधिकार सम्पन्न विद्वत् समिति की जांच प्रक्रिया में लाये बिना संभव नहीं है । संभव है कि देश भर में ऐसा ही कुछ हो रहा हो अतः सर्वाधिकार सम्पन्न समिति की न्यायालय द्वारा नियुक्ति इस रूप में भी आवश्यक हो गयी है । एतद् विषयक प्रस्ताव यदि सार्वदेशिक सभा के तीनों धड़े पास कर लेते हैं और न्यायालय के समक्ष रख देते हैं तो फिर सार्वदेशिक सभा के विधिवत् पुनगठित होने तक तीनों धड़ों के वर्तमान अधिकारियों को इस प्रस्ताव के पास करने के अतिरिक्त कोई अधिकार न रहे तथा वे सर्वाधिकार प्राप्त १५ (या

सभा के गठन की प्रक्रिया पूरी हो जाने तक कार्य करें । प्रस्तावित सर्वाधिकार सम्पन्न समिति ६ माह के अन्दर इस प्रकार से सार्वदेशिक सभा के गठन सम्बन्धी प्रक्रिया अपनाये जाने सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट न्यायालय को देगी जिसे आवश्यक होने पर बढ़ाया भी जा सकेगा । इस बीच देश की किसी भी आर्य प्रतिनिधि सभा या आर्य समाज का स्पॉट-निरीक्षण भी सर्वाधिकार सम्पन्न समिति के सदस्य कर सकेंगे तथा समुचित निर्देश भी उन्हें दे सकेंगे ऐसी व्यवस्था न्यायालय के आदेश में रहेगी । यह सब करवाना सार्वदेशिक सभा के वर्तमान तीनों धड़ों (पक्षों) की मिशन के प्रति निष्ठा पर निर्भर करेगा तभी वे इस आशय का प्रस्ताव अपनी अपनी अन्तरंग सभा या साधारण सभा में पास करके न्यायालय से एतद् विषयक प्रार्थना करेंगे और तभी न्यायालय तत् सम्बन्धी निर्णय ले सकेगा। यदि सार्वदेशिक के तीनों धड़ों को महर्षि दयानन्द के महान् मिशन की रक्षा एवं उन्नयन में अभिरुचि हुई तो वे ऐसा करेंगे अन्यथा आर्य जनता को समझना होगा कि कौन कितना मिशन के हित या अनहित में है यह पता उनके कदम उठाने पर ही चल सकेगा । अन्यथा फिर न तो दयानन्द के मिशन के अनुवर्ती आर्य समाजों का पता लग पायेगा न ही प्रान्तीय सभाओं की स्वच्छ स्थिति का आकलन ही हो पायेगा । ऐसा होने पर ही सार्वदेशिक सभा का निर्वाचन एवं गठन सब कुछ ठीक एवं दयानन्द के महान् मिशन के अनुरूप हो सकेगा और तभी आर्य समाज की संगठनात्मक गरिमा व प्रतिष्ठा तथा मिशन का उन्नयन एवं उसकी रक्षा भी हो सकेगी ।

सभी उपस्थित जनों द्वारा गम्भीर विचार विनिमय के उपरान्त प्रस्ताव को सर्वथा मिशन के हितों के अनुरूप पाकर इसे स्वीकार कर सार्वदेशिक सभा के तीनों धड़ों को इसकी रिपोर्ट भेज दिये जाने का निर्णय हुआ तथा इसे देश भर के तथा विदेशों के सभी समाजों एवं आर्य संस्थाओं एवं संस्थानों तथा आर्य पत्र पत्रिकाओं को भी भेज दिये जाने का निर्णय हुआ ।

अन्त में धन्यवाद ज्ञापन एवं शान्तिपाठ के पश्चात् सभा विसर्जित हुई ।

०५-०५-२०१३ ई०

चान्दरतन दमानी

''अग्नि और जल यही दो सृष्टि के मौलिक तत्व हैं ।।''

– श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

आधुनिक विज्ञान ने 'हिलियम गैस' के संलयन को सूर्य के प्रकाशित होने का कारण बताया है। ऋग्वेद की ऋचा ३-३-६ के अनुसार विद्युत सूर्य को चमकाता है । विद्युत अग्नि की उत्पत्ति के लिये एक मंत्र में निम्न वर्णन प्राप्त होता है--

त्वामग्ने पुष्करादध्यर्वा निरमन्थत । मूर्ध्वोविश्वयवाधतः ।.(यजुः ११, ३२)

जो संसार में सर्वोपरि श्रेष्ठ है उस तुझ विद्युत् रूपी अग्नि को शब्द विद्या द्वारा, ज्ञान का प्रकाश करने वाले विश्व की प्राणापान विद्या—अश्विनौ—ऋण-धनात्मक विद्युत् तत्वों को जानने वाले विद्वान् अन्तरिक्ष का मन्थन करके प्राप्त करते हैं । अर्थात् यह विद्युत अग्नि अन्तरिक्ष मन्थन क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है । मन्थन क्रिया किसी वस्तु को घुमाने से तीव्र गति से चलाने से होती है ।

अब इन विद्युत आदि कणों की उत्पत्ति कैसे हुई । वेद कहता है कि ''ऋतंच सत्यंचाभीद्धात्तपसोध्यजायत। (ऋग्वेद) सृष्टि के प्रारम्भ में जब सत् प्रकृति में परमात्मा के तपः अर्थात् तेज के सामर्थ से 'ऋत' परिवर्त्तन की क्रिया उत्पन्न हुई तब सबसे सूक्ष्म सृजन परमाणु की उत्पत्ति हुई । वेद भी कहता है कि—यत्वातुरीय मृत्युमिदर्कविणोदोयजामहे । (ऋग्वेद) स्थूल, सूक्ष्म, कारण और परम कारण पदार्थों में चौथी संख्या पूरण करने वाले परमेश्वर हैं । तात्पर्य यह कि उस परमकारण—अभिष्टपरमाणु को सृजन कारक बनाने वाला परमेश्वर ही है । जिसके सम्बन्ध से सृष्टि के पूर्व के परमाणु द्रव्यमान होने लगे।''

उनमें जो सत् भाग के परमाणु थे उनसे सूर्य जैसे तेज वाले लोक उत्पन्न हुए । जो रज भाग के परमाणु थे उनके समूहों से चन्द्रादि लोक बन गये और जो तम भाग के परमाणु थे उनके संघात से पृथिवी तथा कुहासा के त्रसेरणुओं से जल एवं उनसे सागर बन गये ।

आचार्य पं० वीरसेन वेदश्रमी जी 'वैदिक सम्पदा' में लिखे हैं कि—

परमाणु की आज की वैज्ञानिक स्थिति बताती है कि उसमें इलेक्ट्रोन, प्रोटॉन और न्यूट्रोन होते हैं। प्रोटान ही सत् है, इलेक्ट्रोन रज है जो गतिशील रहते हैं और प्रोट्रोन सत् होने से केन्द्र में रहने वाला है जिसके चारों ओर इलेक्ट्रोन चक्कर काटते रहते है । रज में ही गतिशीलता है अतः इलेक्ट्रोन है । न्यूट्रोन ,तम भाग है । सत् प्रकाशमान है अतः वही भाग द्यु भाग तत्व है, रज गतिशील भाग है। जो मध्य का अन्तरिक्ष है जिसमें गति होती है और तम जड़त्व, पृथिवी भाग है अतः पृथिवी द्यु और अन्तरिक्ष की स्थिति परमाणु से लेकर सारे ब्रह्माण्ड में हैं ।

इस प्रकार पृथिवी के परमाणुओं में तम की प्रधानता है अतः रज और सत् क्रमशः न्यून है । ऐसे परमाणु जब एक स्थान पर संग्रहीत हो जाते हैं तब वे एक कठोर स्थिति बना लेते हैं और इन्हीं की

न्यूनाधिक स्थिति से पृथिवी के अन्य तत्वों का निर्माण होता है ।

सृष्टि निर्माण के पूर्व जल ही प्रधान था—क्योंकि यह जल तत्त्व सृष्टि का जीवन है अतः यह अपनी अनेक स्थितियों, परिवर्त्तनों एवं रूपों से विविध स्थानों में विश्व का पालन पोषण कर रहा है । आपोवा इदमग्र आसीत्—उपनिषद् का यह वाक्य जल की प्रधानता एवं उसकी प्राथमिकता का भी द्योतक है । स्थूल रूप से दृश्यमान् जल यद्यपि—मैत्रावरुणग्रह—का कार्य रूप है तथापि सृष्टि-निर्माण में जल, प्रारम्भिक एवं परम मौलिक तत्व है । ऐसा शतपथ मे भी कहा गया है 'प्राणोदानौ वै मित्रावरुणौ' इस प्रकार वेद ने जल की प्रकृति मित्र और वरुण को बताया है तथा उनके गुणों को भी प्रकट किया है । वर्तमान विज्ञान की परिभाषा में वरुण या उदान हाइड्रोजन है और प्राण या मित्र आक्सीजन है। (एक जल विन्दु तब बनता है जब उसका सूक्ष्म समूह कण १२।। साढ़े बारह लाख आपस में मिलते हैं ।) वैज्ञानिकों ने जल के दो मूल तत्व माने हैं[१]

सृष्टि निर्माण के मौलिक तत्व को जल, सलिल, अम्भस एवं कुहक आदि शब्दों से भी प्रकट किया जाता है । वेद ने—सरिरंछदयजु० १५—४) कहकर इस शरीर अर्थात सलिल का छादन की स्थिति व्यापकता को ब्रह्माण्ड के चारों ओर भी इंगित किया है ।

मातृगर्भ में जिस प्रकार शिशु के चारों ओर कलल-रस विद्यामान रहता है और उस कलल रस से शिशु का संवर्धन एवं पोषण होता रहता है, उसी प्रकार इस महान् विश्व के चारों ओर रजस् स्थिति में या कुहक स्थिति में जल विद्यामान रहता है । इस प्रकार अन्तरिक्ष अग्नि और जल के कणों से वायु तथा उन चारों परमाणुओं के संघात् से सबसे पहले कैलाश पर्वत हिमालय चन्द्र के योग से उत्पन्न हुआ।

उसके पश्चात् सागर के गर्भ से एक भाग धरती में सात महाद्वीप अनेक परिवर्तनों के द्वारा बन गये, उसके पश्चात् उनमें वृक्ष-वनस्पति आदि उत्पन्न हुए । फिर उनसे जल-स्थल और वायु में उड़ने वाले सारे शरीर धारी प्राणी और अंत में मानव मानवी का संसार उत्पन्न होने लगा ।

तात्पर्य यह है कि ईश्वर ने सर्वप्रथम (पांच सूक्ष्म भूतों से पांचों तत्वों के अन्तर्गत) इसी भूमि को जीवन उपयोगी बनाया । जिसके सहायक सूर्य चन्द्रादि लोक बने और जहां तक मानव उत्पत्ति का प्रश्न है तो सृष्टि की आदि में एक ऐसे मानव उत्पादक नर-मादा के रूप में प्राणी उत्पन्न हुए जो पशु जैसा चलते चलते क्रमशः खड़े होकर चलने लगे । उनमें कुछ बुद्धिमान मझोले शरीर वाले थे । परन्तु जिन प्राणियों से विकसित होकर मानव-मानवी उत्पन्न हुए, उन्हें कोई देखने वाला नहीं हुआ और न वे जीवित रहे, वे विशेष प्राणी लुप्त हो गये, उनका जन्म केवल मानव को उत्पन्न करने के लिये ही दैवीशक्तियों के द्वारा हुआ था ।

---

१. उनमें से हाइड्रोजन के गुण वरुण के तुल्य है और आक्सीजन के गुण मित्र के तुल्य हैं और दोनों से जल का जो फार्मूला वैज्ञानिक गण लिखते हैं वह H_2O इस प्रकार हैं । अर्थात् हाइड्रोजन वरुण तत्व २ भाग और आक्सीजन-मित्र तत्व १ भाग । दोनों संख्याओं का स्तोम-समुह २ १ अर्थात् दो और एक (२:१) के अनुपात के रूप में दृष्टिगोचर होता है ।

जो महान् शक्ति शून्य में भासने वाले अद्रव्यमान परमाणुओं को द्रव्यमान बनाने वाले अभिष्ट अणु को पैदा कर सकती है ।'जो शक्ति सूर्य चन्द्रदि को उत्पन्न कर सकती है । जो शक्ति पंच तत्वों को जीवन उपयोगी बना सकती है । जो शक्ति सागर-महासागर और जल, स्थल में रहने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणियों को उत्पन्न कर सकती है । जो सर्वश्रेष्ठ मानव शरीर के डिजाइन को बुद्धि पूर्वक बना सकती है । जो विभिन्न प्रकार के वृक्ष-वनस्पतियों को उत्पन्न कर सकती है वही शक्ति आदि में मानव में सर्वश्रेष्ठ को वेद विद्या का ज्ञान भी दे सकती है ।

तात्पर्य यह कि उनका अन्तश्चक्षु खुल जाता है, जो अपनी उज्जवल प्रतिभा से पदार्थों के तात्विक रूप का अनुभव करते हैं, वह परमात्मा की प्रेरणा से इस पवित्र मंत्र को अपने विमल हृदयों द्वारा पाते हैं । उन्ही की वाणी वेद वाणी होती है ।

इयं पित्र्याराष्ट्र्ये त्वग्ने प्रथमाय जनुषे भुवनेष्ठः

यह परमपिता परमात्मा की सत्य विद्या, प्रथम जन्म लेने वाले को प्राप्त होती है, उसका ज्ञान ब्रह्माण्ड में स्थिर रहता है ।

यज्ञेनवाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दनृषिषु प्रविष्टाम् । (१०/७१,३)

वाणी की खोज यज्ञ से की गई । उसे ऋषियों में प्रविष्ट पाया गया ।

वेद ने स्पष्ट कहा—अपूर्वेणोषिता वाचः१ (अथर्व) अनादि परमात्मा ने शब्दों की प्रेरणा की है ।

मु० पो० मुरारई, जिला-वीरभूम (प० बंगाल) ७३१२१९

अध्यापकों की आवश्यकता

श्री गुरु विरजानन्द संस्कृत महाविद्यालय, करतारपुर निम्नलिखित अध्यापकों की आवश्यकता है ।

१.वेदाचार्य वेद कथा संस्कृत एम. ए. २. साहित्याचार्य, एम. ए. संस्कृत में

३. व्याकरणाचार्य एम. ए. संस्कृत ४.दर्शनाचार्य, एम. ए. संस्कृत

५. कम्प्यूटर टीचर

नोट—क) आचार्य परीक्षा पास अध्यापकों को वरीयता प्रदान की जाएगी ।

ख) सेवानिवृत्त संस्कृत विद्वान् । विदुषियां भी इसके लिए आवेदन भेज सकते /सकती है ।

ग) वेतन योग्यतानुसार दिया जाएगा ।

घ) आवेदन पत्र शीघ्रातिशीघ्र भेजे जाएं और आवेदन पर अपना मोबाइल नं० अवश्य दें

भूषणलाल शर्मा, प्राचार्य

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति

– प्रो० ओम कुमार आर्य

अर्थात् आठ ऐसे गुण हैं जिनके धारण करने से मनुष्य का व्यक्तित्व, उसका आचरण उसका जीवन निखर उठता है, चमक उठता है जाज्वल्यमान् हो जाता है । यह कथन है 'विदुरनीति' अध्याय एक श्लोक १०४ में महात्मा विदुर का । 'विदुरनीति' में कुल आठ अध्याय हैं जिनमें महामंत्री विदुर ने धृतराष्ट्र को जहाँ आर्य राजनीति का सदुपदेश दिया है, वहीं अन्य परिवार, समाज, राष्ट्रहित की उपयोगी बातें बताई हैं और प्रयास किया है कि महाराज ध्तराष्ट्र पुत्र-मोह के पाश से बाहर निकलें, एक पिता की तरह नहीं बल्कि एक राजा की तरह शास्त्रोक्त न्यायोचित व्यवहार करें और पाण्डु-पुत्रों को उनका हिस्सा, राज्य में उनको जो भाग देय है वह तुरंत देवें, इसी में कौरव-वंश की भलाई है । श्लोक में वर्णित आठ गुणों की चर्चा से पूर्व यह बता देना भी आवश्यक है कि आजकल के स्वार्थी, पदलिप्सु, सुविधा भोगी, येन केन प्रकारेण जुगाड़ बिठाकर जनता के खून पसीने की कमाई को बेरहमी से लूट खसोट कर अपने घर और विदेशी बैंकों को भरने वाले तथाकथित मंत्री यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि महात्मा विदुर किस उच्च नैतिकता के धनी थे, कितने सिद्धांत निष्ठ एवं सत्य के पक्षधर थे । उनके उच्च चरित्र का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि जब महाराज धृतराष्ट्र ने उनका उचित परामर्श ठुकराकर कुरुवंश को सर्वनाश के मार्ग पर धकेल दिया तो उनके इस कृत्य से अपनी असहमति जताकर और महाराज को उनके गलत निर्णय के कारण होने वाले विनाशकारी परिणामों से सावधान करके वे (महामंत्री विदुर) महामंत्री के पद से पृथक हो गये । आज का कोई मंत्री इतना बड़ा कदम उठाना तो दूर, उठाने की सोच भी नहीं सकता । पता नहीं राजनेताओं में यह मेरुदण्ड विहीनता, आत्म सम्मान का नितान्त अभाव और नैतिक दिवालियापन कहाँ से आ गया । ऐसी भ्रष्ट कुपरंपरा भारत की तो कभो नहीं रही शायद जब से 'इण्डिया दैट इज (i.e.) भारत' के बीज बोये गये हैं तभो से यह घातक, विनाशकारी महारोग (पदलिप्सा, हायधन, हायधन, भ्रष्टाचार आदि) इस देश में घुसा है । 'विंदुरनीति' में महात्मा विदुर ने नीति-विषयक श्लोकों में वे सब उपाय सुझाये हैं जिनसे हमारा आचरण शुचि, स्वच्छ, पारदर्शी, पाक, साफ बन सकता है और हम उपर्युक्त महारोगों से स्वयं भी बच सकते हैं, अपने राष्ट्र को भी बचा सकते हैं । उन्होंने जिन आठ सद्‌गुणों या उच्च नैतिक मूल्यों का उल्लेख किया है वे अग्रलिखित इस श्लोक में है–

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति, प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चा बहु भाषिता च, दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ।। अध्याय १ श्लोक १०४

विदुर के अनुसार व्यक्ति के जीवन को उज्ज्वल एवं आभायुक्त बनाने वाला प्रथम गुण है बुद्धिमत्ता अर्थात् बौद्धिक प्रखरता । प्रखर बुद्धि के आश्रय में 'विवेक' का वास होता है और जहाँ विवेकशीलता है वहाँ गलत निर्णय अथवा गलत कार्य होने की कोई संभावना नहीं होती । इसलिये बौद्धिक प्रखरता जीवन को चमकाने वाला गुण है । कौल्यं अर्थात् कुलीनता दूसरा महत्त्वपूर्ण गुण है जो व्यक्ति को एक अलग पहचान देता है । कुलीनता से तात्पर्य किसी उच्च कुल या राजवंश से नहीं है, इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति के आचरण में शालीनता होनी चाहिये, उसका आचरण 'संस्कृत'

हो, अन्यों वे प्रति उसके मन में आदर हो । उसमें विनम्रता एवं सौम्यता हो । हमारे सभी महापुरुष विनम्रता एवं सौम्यता के जीवंत प्रतीक थे', यही कारण है कि आज लाखों-लाखों वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी उनके व्यक्तित्व की चमक, उनका आभा मण्डल लेशमात्र भी फीका नहीं पड़ा है, उलटे ज्यों-ज्यों समय बीता है उनकी चमक में और अधिक निखार आया है । किसी तथा-कथित उच्च अथवा अभिजात वंश में उत्पन्न होना मात्र कुलीनता नहीं है, कुलीनता के गुण का तो आचरण-गत औदात्य एवं भद्रता से संबंध है ।

'दम' अर्थात् दुष्प्रवृत्तियों का दमन, उन पर नियंत्रण, अपने मनोविकारों पर प्रभावी रोक, यह सब दमन के अंतर्गत आता है । 'दमन' और ' शमन' में कोई व्यावहारिक अन्तर नहीं है, हाँ तात्त्विक अन्तर अवश्य है । प्रजापति के शाश्वत उपदेश द—द—द—में देवों के लिये अपनी वृत्तियों का 'दमन' करने का ही तो उपदेश निहित है, देवों के लिये द=दाम्यत । जो अपनी नकारात्मक, पतनकारी चित्तवृत्तियों का जिस सीमा तक 'दमन' करने में सक्षम है उसी सीमा तक वह 'देवत्व' का अधिकारी है । सारा अष्टांग योग इसी दमन शमन की विस्तृत व्याख्या है, वैज्ञानिक प्रक्रिया है जो व्यक्तित्व को दीप्तियुक्त, विलक्षण और दिव्य ही नहीं बनाती बल्कि उसको समाधि तक पहुंचाकर उसका आनन्द स्वरूप परमेश्वर से मिलन=योग=साक्षात्कार भी करवा देती है । श्रुत से अभिप्राय है शास्त्र-ज्ञान, जो स्वाध्याय, सत्संगादि से प्राप्त होता है । श्रुत से व्यक्ति कैसे निखरता है, उसका व्यक्तित्व कैसे चमक उठता है इसके जीते जागते उदाहरण देखने हों तो स्वामी श्रद्धानंद, भक्त अमीचन्द, महात्मा भक्त फूलसिंह आदि महापुरुषों की जीवनियाँ पढ़नी चाहिये तब समझ में आ जायेगा कि महात्मा विदुर द्वारा बताया गया 'श्रुत' गुण व्यक्ति को कैसे चमकाता है ।

अगला गुण है पराक्रम, अर्थात् शौर्य अर्थात् विघ्न, बाधाओं, झंझट, जीवन के हर उतार चढ़ाव का साहसपूर्वक सामना करने का गुण । पराक्रम का धैर्य, सहनशीलता, अविचल, आत्मविश्वास आदि से अटूट संबंध है, पराक्रम मात्र बाहुबल का ही परिचायक नहीं है यह व्यक्ति की आत्मिक शक्ति का भी द्योतक है.। पराक्रम के बल पर ही योद्धा रण में विजयी होते हैं, साधक और किसी व्रत के व्रती, किसी संकल्प से संकल्पित व्यक्ति पराक्रम के बल पर ही अपने लक्ष्य तक पहुंचते हैं । पराक्रम का गुण जीवन में श्री, विजय और यश प्राप्त करवाने में बड़ी अहम् भूमिका निभाता है । इससे व्यक्ति के व्यक्तित्व की कान्ति को चार चांद लग जाते हैं । महर्षि दयानन्द ने 'स्वमन्तव्या मन्तव्य प्रकाश' में महाराज भर्तृहरि के श्लोक को उद्धृत करके—

न्यायत्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ की जो बात कही है उसमें 'धीर' पराक्रमी व्यक्ति का ही पर्यायवाची शब्द कहा जा सकता है । महर्षि ने जिस संदर्भ में यह श्लोक उद्धृत किया है वहाँ 'धीरत्व' मनुष्यपनरूप धर्म का समानार्थी है और इस सद्गुण से मनुष्य को कभी पृथक् नहीं होना चाहिये अर्थात् पराक्रमी व्यक्ति अपने सहज मनुष्यपनरूप धर्म को कभी नहीं छोड़ता । 'रामचरित मानस' में आया यह कथन— रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जायें पर वचन न जाई ।

रघुवंशियों के अटल पराक्रम की ओर ही इंगित कर रहा है ।

महात्मा विदुर आगे कहते हैं कि व्यक्ति का अपनी वाणी पर संयम होना चाहिये अर्थात् अबहुभाषिता=मितभाषी होना भी व्यक्ति की प्रामाणिकता, उसकी विश्वसनीयता, लोकप्रियता में वृद्धि

करने वाला गुण होता है । यह ठीक है कि speech is silver लेकिन यह और भी ठीक है कि Silence is gold. आवश्यक है कि व्यक्ति को पता होना चाहिये कि वह कब, कहाँ और क्या बोले, पर यह और भी ज्यादा जरूरी है कि व्यक्ति को पता होना चाहिये कि वह कब, कहाँ और क्या न बोले । व्यर्थ का प्रलाप व्यक्ति के छिछोरेपन का लक्षण है ।मितभाषी होने के लिये यह भी आवश्यक है कि व्यक्ति वाणी के इन चार दोषों से बचे—(क) पारुष्यम्—वाणी की कटुता (ख) पैशुन्यम्—चुगली करना (ग) अनृत कथन अर्थात् झूठ बोलना तथा (घ) असंबद्ध—प्रलाप—बेसिर पैर की, प्रसंग से विषय से जिनका कोई लेना देना नही ऐसी बेमतलब बातें करना अबहुभाषिता—मितभाषिता भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को चमकाती है, उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाती है ।

विदुर जी ने इस शृखला में सातवाँ गुण 'दान'=दानशीलता बताया है । प्रजापति के जिस द—द—द उपदेश का पूर्व में उल्लेख किया है, वहाँ एक 'द' मनुष्यों के लिये है जिसका अर्थ है 'दान'। दान के अभाव में मनुष्य समाज का उत्थान एवं विकास रुक जाता शास्त्रों ने दान की महिमा का विस्तार से वर्णन किया है । 'यज्ञ' जिस 'यज्' धातु से बना है उसका भी एक अर्थ दान है ।

धर्म के तीन स्कन्धों में एक स्कन्ध दान है । मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम, महारथी कर्ण, सर्वस्व दानी भामाशाह की दानशीलता ज़ग-प्रसिद्ध है । व्यक्ति को चमकाने या निखारने का सीधा सा अर्थ है उसके यश, उसकी कीर्ति का विस्तार करना । इस दृष्टि से दान=दानशीलता भी चमक बढ़ाने वाला गुण है ।

इस सूची में अंतिम=आठवाँ गुण है कृतज्ञता का भाव । कृतज्ञता एक दैवी गुण है और इसका विलोम (कृतघ्नता) एक आसुरी दुर्गुण है, महापाप है । पंच महायज्ञ एक प्रकार से किसी न किसी रूप में कृतज्ञता भाव को प्रगट करने के ही सुकृत्य हैं । अतः महात्मा विदुर ने 'कृतज्ञ होना' व्यक्ति की एक महान् विशेषता कही है ज़ो उसके यश में वृद्धि करती है । इस प्रकार महात्मा विदुर ने उपर्युक्त ये आठ गुण गिनाये हैं—

प्रखर बौद्धिकता, कुलीनता, दमन, शास्त्रज्ञान (सत्संग भी), पराक्रम, अल्पभाषी होना, दानशीलता और कृतज्ञता—जो व्यक्ति को 'दीपयन्ति' अर्थात् चमकाते है, दिग्दिगन्त में उसके यश को फैलाते हैं । विदुर जी ने अनेकविधि नीति उपदेश देकर प्रयास यह किया था कि वे किसी प्रकार महाराज धृतराष्ट्र के विनाशकारी पुत्रमोह को नष्ट करके उन्हें सत्य, न्याय, धर्म के पथ पर प्रवृत्त कर पाते, ऐसा तो वे नहीं कर पाये पर इस बहाने संसार को 'विदुरनीति' के रूप में एक ऐसा दुर्लभ ग्रन्थ-रत्न अवश्य मिल गया जिसका सानी नीति-ग्रन्थों की परंपरा में अन्य कोई ग्रन्थ नहीं रखता है । हमें उनके इस अनमोल उपदेश को जीवन में धारण करना चाहिये जिससे कि हम भी अपने जीवन को सार्थक एवं सफल बना सकें । सारांश यह है कि—

''विदुरनीति'' में विदुर महात्मा कुछ ऐसे गुण बतलाते हैं जो अपनी अनोखी चमक दमक से व्यक्ति को चमकाते हैं । बुद्धिमत्ता और कुलीनता तथा दमन अपवृत्तियों का सत्सगादि में जाने से बढ़ता है मान व्यक्तियों का। पराक्रम और अल्पभाषिता से प्रतिष्ठा बढ़ती है दानशीलता व कृतज्ञता से व्यक्ति को प्रसिद्धि मिलती है ।

उक्त गुणों के कारण— युगों-युगों तक कायम रहती व्यक्ति की चमक जमाने में
कभी न फीकी पड़ती लोगों उसकी चमक जमाने में ।

संपर्क सूत्र–१६०७/ ७, जवाहर नगर पटियाला चौक जीन्द (हरियाणा)-१२६१०२
दूरभाष : ०१६८१-२२६१४७, ०९४१६२९४३४७

बोलना सिखाया जिसने, अब उनसे ही बोलते नहीं

– श्री देवनारायण भारद्वाज

'बोलना सिखाया जिसने अब उनसे ही बोलते नहीं' शीर्षक में इंगित समस्या आज की ही नहीं, पुरातन काल से चली आ रही है । भले ही पहले अतिन्यून हो, अब अधिक है ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी से पूर्ण प्रभावित होकर छलेसर के रईस ठाकुर मुकुन्दसिंह ने उनको आग्रह पूर्वक अपने गांव में आमन्त्रित किया । हाथी-घोड़ा-पालकी-सैनिक व विशाल जन-समूह के साथ उनका स्वागत किया । उनके प्रवास के लिये नवीन भवन बनवाया । विशेष यज्ञ रचाया । पण्डित व प्रजाजन की वहां भीड़ लगी रही । इतने कोलाहल में भी ठाकुर मुकुन्द सिंह के पुत्र कुंवर चन्दन सिंह का मौन महर्षि को बहुत अखर रहा था । कारण कुछ भी हो, पिता-पुत्र की बोलचाल बन्द थी । ग्राम में कुम्भ जैसा मेला और उसका शोर, फिर भी पिता-पुत्र में मनोमालिन्य बना रहे, महर्षि इस पीड़ा को सहन नहीं कर सके । इन दोनों के सम्मुख वे बोले और ऐसा बोले कि पिता ने निज पुत्र के लिए अपनी बांहें फैला दी तथा उसे अपनी गोदी में बैठा लिया और मन का मैल सदा-सदा के लिये धुल गया ।

परमपिता परमात्मा अपने प्रतिनिधि पुत्र सन्तानरूप में भेजकर समाज में श्रेष्ठ वार्तालाप का वातावरण बनाते रहते हैं । जब यही तथाकथित सन्तान स्वार्थी हो जाते हैं, तो समाज में संवाद समाप्त होकर विवाद-परिवाद की वायु बहकर सन्ताप उत्पन्न कर देती है ।

विवाह संस्कार के कारण श्रीमती सहित एक उस नगर में जाने का अवसर मिला, जहां हम कभी ४९ वर्ष पहले गये थे । श्रीमती जी अपनी दूर की दादी से मिलना चाहती थीं और मुझे अपने समवयस्क मित्र से मिलने का आकर्षण था । मित्र मिले, वे उतने ही प्रतिष्ठित व लोकप्रिय मिले, जितने राजासाहब सम्बोधन से जाने वाले उनके पिता थे । जितनी अधिक उनकी भूमि—भवन—धन की सम्पदा थी, उतनी ही उनकी सुकीर्ति की मान्यता भी थी । उन्होंने सर्वत्र मुझको भ्रमण कराया और ले जाकर खड़ा कर दिया अपने एक पुत्र के प्रभूत प्रतिष्ठान पर और लगे उससे मेरा परिचय कराने ।

वह अच्छा खासा समझदार पुत्र न उनसे बोला और न मुझसे नमस्ते तक ही । मित्र तो खड़े के खड़े रह गये । किन्तु मुझसे वहां रुका नहीं गया और मैं उनका हाथ पकड़कर आगे आगे बढ़ा लाया । मार्ग में उन्होंने बताया कि इस पुत्र को मुझसे यह आपत्ति है कि पिता की इतनी उच्च मान-प्रतिष्ठा होते हुए भी मेरे लिए कुछ नहीं किया ।

यह तो रही मेरी भेंट मित्र से, अब श्रीमती जी की दूर की दादी की कहानी सुनिये । मिलने पहुंची तो उनको घर के बाहर एक टूटी-टाटी खाट पर पड़ा पाया । देखकर उठीं, इनको अपने हृदय से चिपटा लिया । दादी के स्वावलम्बी पुत्र का बाल-बच्चों वाला परिवार, किन्तु दादी से कोई बोलता तक नहीं ।

यह जो हमने दूर के नगर में जाकर देखा, वह हमारे नगर में आसपास भी घटता दिखाई देता रहता है । हम दो ऐसे बच्चों को जानते हैं, एक दूसरे ही वर्ष में चलने और बोलने लगा तथा दूसरे बच्चे ने इन दोनों कार्यों में कई-कई वर्ष लगा दिये । जब यह चलता-बोलता नहीं था, तो माता-पिता एवं परिजन सब व्याकुल पहते थे । उपचार-उपाय खोजते व चिन्तित रहते दिन रहते थे । जिन माता-पिता-अभिभावकों

ने उन्हें बोलने में समर्थ बना दिया, बड़े होकर वही बच्चे अन्य सबसे तो बोलते हैं, पर अपनों से ही नहीं बोलते है, तो उनका हृदय टूट जाता है । इसका दूरगामी दुष्प्रभाव ऐसी सन्तानों पर पड़ने से कोई रोक नहीं सकता है । माता-पिता ही क्या उस परमेश प्रभु के साथ भी ऐसे लोगों का यही व्यवहार होता है, जो माता-पिता दोनों के रूप में जन्म देकर पालन-पोषण करता है । प्रभुदेव सविता अग्नि के समक्ष शान्त शीतल जलांजलि पूर्वक व्यक्ति मांग करता है –

वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।। (यजु० ३०/१)

अर्थात्-हे वाणी के स्वामी परमेश्वर ! आप हमारी वाणी को मधुर बना दीजिये ।

जीभ तो मानव-पशु सबके पास है । पशुओं की जीभ तो सदा समान रहती है, किन्तु मनुष्यों की जीभ तो सदा स्वाद बदलती रहती है । कभी कड़वी, कभी मीठी । कड़वी हुई तो मानो कटार हो गयी, दिल के आर-पार हो गई, अतः इसका कोमल व मधुर रहना ही ठीक है, प्रभु से यही मांग है । इसी क्रम में अभिभावकों की उत्कट कामना द्रष्टव्य है–

ओ३म् उप नः सूनवो गिरः श्रृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृडीका भवन्तु नः ।। (साम० १५९५)

अर्थात्–हमारे पुत्रगण अविनश्वर परमेश्वर की वाणी सुनें और हम लोगों को सुखी करें । परमेश प्रभु की वाणी वेद का कितना ही मधुर सन्देश है–

ओ३म् उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणे रणे ।। (साम० १३८२)

मन्त्र–भावार्थ देखिये

क्षण-क्षण सम्मुख रण आते हैं । धन, जय प्रभु ही दिलवाते हैं ।।
प्रभु हमको शक्ति विमल देते, हम जिससे शत्रु मसल देते ।
प्रभु ने जीवन धाम दिया है, प्रभु ही इसको चमकाते हैं ।।
जीवन्त प्राणधारी आओ, प्रभु से सम्पत्ति ले जाओ ।
बैठो प्रभु से करो वार्ता, सन्मार्ग वही दिखलाते हैं ।।
जिसने निज को उत्कृष्ट किया, हर कष्ट सहनकर पुष्ट किया ।
वे नर जीवन संग्रामों में, प्रभु की सहाय पा जाते है ।।
क्षण-क्षण सम्मुख रण आते हैं, धन, जय प्रभु ही दिलवाते हैं ।।

'सामश्रवा' के देवातिथि द्वारा रचित सामगीत में यही सन्देश निहित है कि जिस प्रभु से हम हर संग्राम में विजय और वैभव प्राप्त करने की कामना करते हैं, और वह हमें सुलभ भी हो जाता है । इस ऋद्धि-सिद्धि-उपलब्धि के बाद, अधिकांश व्यक्ति इसी में रम जाते हैं । इसकी ही बात करते रहते है। प्रभु से बात करने का उनके पास समय ही नहीं बचता है । मन्त्र का मृदुल आदेश है कि–इसे मांगने व मिल जाने के बाद भी प्रभु से बात करते रहो, स्तुति करके धन्यवाद देते व आशीर्वाद लेते रहो ।

परमेश प्रभु की ही भांति हमारे पितरजन भी हमें सब कुछ देते हैं । तन देते हैं, सुसंस्कृत मन देते हैं, यथासम्भव धन देते हैं, विद्या और गुण देते हैं, फिर भी हम सर्वसमृद्ध होकर जरा–सी बात पर उनसे बोलना ही बन्द कर देते हैं । वे तो वयोवृद्ध हैं, अपने समस्त उत्तराधिकार देकर हमें समृद्ध करके चिर-विदा लेकर चले ही जाने वाले हैं, फिर हम उनसे बात न करें, तो इसे हमारा अधर्माचरण ही कहा जायेगा।

यहां पर हिन्दी के प्रसिद्ध रसिक कवि बिहारी जी का एक दोहा उद्धृत किया जा रहा है, जो इस प्रकार से दो अर्थ प्रस्तुत करता है कि एक ओर तो वे अपने आराध्य श्रीकृष्ण का तथा दूसरी ओर अपने वंश व पिता का स्मरण भी कर लेते हैं । लीजिये पढ़िये—

प्रगट भए द्विजरात-कुल, सुबस बसे व्रज आइ ।
मेरे हरो कलेश सब, केशव के सबराइ ।।

दोहे में प्रयुक्त 'द्विजराज' शब्द द्वि अर्थक है—एक चन्द्रमा व दूसरा ब्राह्मण । दोहे का एक अर्थ बनता है कि—केशव कृष्ण चन्द्रकुल में जन्म लेकर ब्रजभूमि में बस रहे हैं, वे मेरे सभी कष्टों को दूर करें । दूसरे अर्थ में—वे अपने पिताश्री को आराध्यतुल्य स्मरण करते हुए कहते हैं कि—मैं भी ब्राह्मण कुल भूषण व्रजवासी हूं मेरे जन्मदाता केशवराय मेरे कष्टों को दूर करें ।

कभी-कभी ऐसा कुयोग भी आ जाता है, जब सन्तान से पितर वृद्धजन अपनी ओर से बोलना बन्द कर देते हैं, वह भी जरा से भ्रम के कारण ।

एक माता के तीन-चार पुत्री एवं एक पुत्र था । किशोरावस्था में पुत्र नहीं रहा । उनका बड़ा दामाद उनका मातृवत् सम्मान करने वाला है । एक बार अपना भोजन साथ लेकर वह दामाद के घर गयीं । सदैव की भाँति दामाद ने स्वागत अभिवादन किया और उनसे भोजन करने के लिये जोरदार आग्रह करने लगा । माता मना करती रही । दामाद के मुख से निकले शब्द—'आपके कोई है नहीं, इसलिये मैं आपसे खाने के लिए कह रहा हूं, कोई होता तो भला मैं क्यों कहता' ?

उस माता के हृदय में यह शब्द ऐसे चुभ गए कि कई महीनों से उस माता ने अपने दामाद से बोलचाल बन्द रक्खी । दामाद को स्थिति का आभास हुआ । अनेक प्रकार से उसने बोलना चाहा, किन्तु माता का मुंह बन्द का बन्द ही रहा । माता ने यह स्थिति मुझे बताकर कुछ परामर्श चाहा, तो मैंने कवि रहीम के शब्दों को—

'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात'

दोहरा दिया । तभी माताजी ने कहा कि अब तो वे मुझे अपने बच्चों के साथ तीर्थयात्रा पर ले जाना चाहते है । ठीक ही है, सुखद अन्तराल में दुःखद बात विस्मृत होना असम्भव नहीं है । धर्म के दश लक्षणों में 'क्षमा' विलक्षण है । और सभी एक पक्षीय हैं, पर क्षमा द्विपक्षीय है । क्षमा मांगने वाला धर्म का पालन करता है और क्षमा करने वाला सद्धर्म का परिपालन करता है । बड़े लोग किसी भी कारण से बोलना बन्द करने के स्थान पर अपनी सकारात्मक सोच विकसित करके प्रकरण की नकारात्मकता को तिरोहित करके, अपने छोटों को सन्मार्ग दिखाने का सत्प्रयास कर सकते हैं ।

उपरोक्त प्रकरण में घोर निराशा को घनघोर आशा में इन्हीं माताजी के शब्दों ने बदल दिया । वे बोली कि—कुछ दिनों के लिए बाहर क्या चली गयी, पड़ोसी बच्चों ने छत पर कूद—फांदकर सीमेंट उखाड़ दिया । जरा—सी वर्षा में छतें टपकने लगती हैं । प्रयोग में न आने से हस्तचलित नल ने पानी देना बन्द कर दिया और शौचालय में पानी नहीं । एक अकेले के लिये हजारों रुपये व्यय करके ठीक करायें, फिर चले जायें बाहर तीर्थयात्रा पर । लौटकर आयें तो वही 'ढ़ाक के तीन पात' । मैंने उनसे कहा कि—यह सब अव्यवस्थायें इसीलिए हुई हैं कि आप दामाद का आमन्त्रण स्वीकार कर कुछ दिन बाहर तीर्थाटन कर आयें । जब लौटकर आयेंगी, तो तीन दिन में ही यह सब बिगड़े काम बन जायेंगे,

और सम्बन्ध स्नेहपूर्ण सामान्य हो जायेंगे । शायद प्रभु भी यही चाहते हैं । माताजी जो सुस्त-मुस्त आयी थीं, मस्त-चुस्त मुस्कराती चली गयीं ।

ओ३म् महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना । धियो विश्वा वि राजति ।। (ऋक् १/३/१२

इस मन्त्र अनुसार ज्ञान देवी सरस्वती की उपासना से ज्ञान के महासागर का आभास मिलता है । जो माता सरस्वती के ज्ञान-ध्वज के नीचे आ जाते हैं, वे अपनी सब बुद्धियों को विशेषतया दीप्त करके जिस-जिस वस्तु की गहराई में जा चाहते हैं, उस-उस वस्तु के तत्त्वबोध को प्राप्त कर लेते हैं । गहराई में उतरने वालों को सब कुछ मिल जाता है, और किनारे बैठे रहने वाले इधर-उधर ताकते रह जाते हैं । कहा भी है—

सरस्वती के भंडार की, बड़ी अपूरब बात ।
खर्चे से घटती नहीं बिन खर्चे घटि जात ।

शून्य से शिखर पर पहुंचने वाले व्यक्तियों की सन्तानें उनकी प्रतिष्ठा को तो देखती हैं, उनकी त्याग-तपस्या-श्रम व पुरुषार्थ को नहीं देख पाती । सन्तानों की अभिलाषा रहती है कि वे भी प्रतिष्ठा पायें, परन्तु अपने बल पर नहीं, पूर्वजों की प्रतिष्ठा के बल पर । उदाहरण स्वरुप—एक कथानक प्रस्तुत है ।

पर्वतीय क्षेत्र से एक किशोर प्रयाग आया । श्रम-साधना एवं सद्भावना से प्रयाग विश्वविद्यालय में उच्च से उच्चतर शिक्षा प्राप्त की । अपनी मेधा के श्रेयस्वरूप उसी विश्वविद्यालय में प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष बना और सेवा-निवृत्त हो गया । इस लम्बे अन्तराल में उसके शिष्यों की शृंखलायें बढ़ती गयीं, और परिवार की पीढ़ियां भी बढ़ती गयी । महानगर में शिक्षा सांस्कृतिक व सामाजिक क्षेत्रों में वयोवृद्ध प्राध्यापक की अकूत मान्यता होने लगी । इस मध्य हुआ यह कि उनके पौत्र की उपस्थिति कम होने के कारण परीक्षा में बैठने से रोक दिया । पौत्र व घर वालों ने जोर लगाकर देख लिया, पर उसको परीक्षा में बैठने की अनुमति नहीं मिली । थककर घर वालों ने प्रतिष्ठित पितामह से अनुशंसा करने को कहा, उन्होंने भी अनसुनी कर दी । घर वालों ने उनसे बोलना बंद कर दिया । अन्ततः प्राध्यापक पितामह पौत्र को लेकर विश्वविद्यालय के तत्संबंधी विभाग में जा पहुंचे । तेजस्वी विभागाध्यक्ष अपने उच्चासन से उठे और वयोवृद्ध प्राध्यापक के चरण-स्पर्श करके अपने आसन पर बैठाया । स्वागत करते हुए वे बोल पड़े, प्रोफेसर सर! आज मैं जो कुछ हूं, आपके कारण हूं । उस समय उपस्थिति कम होने पर आप मुझे परीक्षा में बैठने से रोकते नहीं, तो मैं विशद तैयारी नहीं करता, शीर्ष स्थान न पाता और आज विभागाध्यक्ष न होता । वर्त्तमान विभागाध्यक्ष ने उनके आने का कारण पूछा । उन्होंने कोई अनुशंसा नहीं की । इधर से निकल रहा था, सोचा मिलता चलूं अच्छा! अब चलता हूं । पौत्र ने घर आकर सारी बात बतायी । घर वालों को समझाकर सन्तुष्ट कर दिया, आगे की तैयारी के लिये स्वयं को पुष्ट कर लिया । वयोवृद्ध प्राध्यापक से सबके प्रणाम चल निकले और पौत्र का सुनिश्चय उत्कृष्ट हो गया । उसका भी भविष्य समुज्वल हो गया ।

'वरण्यम्', अवन्तिका (प्र.) रामघाट मार्ग, अलीगढ़

पृष्ठ २ का शेषांश

भी न करता था। परिवार में न बीड़ी, न हुक्का, सिगरेट और चरस की बात ही क्या हो सकती थी ! इन सब कारणों से जहाँ एक ओर श्री जयनारायणजी का समाज में सम्मान बढ़ रहा था, उनकी सच्चरित्रता और दानशीलता की धाक जम रही थी, वहीं विरोधियों में विरोध और क्षोभ भी बड़ रहा था। विरोधियों ने जयनारायणजी के विरुद्ध मारवाड़ी समाज और मारवाड़ी पंचायत में छिपछिप कर कुभावनाग्रस्त विरोध का वातावरण बनाना आरम्भ कर दिया था। इसके विस्तार में जाने से पूर्व यह बताना आवश्यक है कि श्री जयनारायणजी की दादी का अन्त्येष्टि संस्कार रामगढ़ में वैदिक रीति से पाली रामजी (जयनारायण के पिता जी) ने किया था। इस प्रकार अन्त्येष्टि संस्कार तो उनके परिवार में श्री जयनारायणजी के पिताजी पालीरामजी के समय से ही होता था। अतः जयनारायणजी ने अपनो पैतृक परम्परा ही अपनायी थी। किन्तु विरोधियों को तो विरोध से काम था। उन्हें उचित अनुचित के विचार से कुछ प्रयोजन न था।

इस समय जयनारायणजी के परिवार में एक दुःखद घटना घटी और उससे विरोधियों ने बड़ा बवेला खड़ा कर दिया। इस घटना को अपनी ओर से न लिखकर श्री बालचन्दजी मोदी के इतिहास से हम अविकल उद्धृत कर रहे हैं[१]—

'''१९६६ विक्रमी में हठात् एक ऐसी घटना की गुप्तगोष्ठी वालों को और भी आगे बढ़ने का सहारा मिल गया। घटना यह थी कि जयनारायणजी के मझले पुत्र श्री दीपचन्दजी की स्त्री का असमय में ही शरीरान्त हो गया। जयनारायणजी ने १६ संस्कारों के अनुसार अपनी पुत्रवधू का अन्त्येष्टि कर्म कराया। सनातनधर्मी शव का सिर दक्षिण की ओर रखते हैं किन्तु जयनारायणजी शव का सिर उत्तर की ओर रखा और उसी अवस्था में उसका दाहकर्म भी किया गया। अन्त्येष्टि कराने वाले बड़ाबाजार के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० रामदयालजी शर्मा सिंघानेवाले थे। ये वैद्यजी यद्यपि विशुद्ध सनातनी थे किन्तु चरम सत्य के प्रतिपालक थे। फिर क्या था ? कुछ व्यक्तियों ने भोलीभाली जनता को भड़काना शुरू कर दिया कि मृत व्यक्तियों की अन्त्येष्टि करानी सनातनधर्म विहित कर्म नहीं है। इस कर्म को कराने वाले या तो नास्तिक होते हैं या आर्यसमाजी। अन्त्येष्टि कर्म कराना सनातनधर्म के अनुकुल है, या प्रतिकुल इसका विचार किसी ने नहीं किया। इसके अतिरिक्त किसीने यह भी नहीं सोचा कि १६ संस्कारों का क्या महत्त्व है। श्री जयनारायणजी और पं० रामदयालजी के विरुद्ध समाज में एक बड़ा आन्दोलन शुरू हो गया....गुप्तगोष्ठी द्वारा सनातनधर्म नामक दैनिक पत्र निकाला गया। उसने उचित-अनुचित सभी प्रकार से मनमानी हांकनी शुरू की। बदले में सत्य सनातनधर्म पत्र का प्रादूर्भाव हुआ और जैसे को तैसा उत्तर दिया जाने लगा।

''गुप्तगोष्ठी वालों ने बाहर से कुछ ऐसे नामीगरामी विद्वानों और वक्ताओं को बुलाया जो सनातनधर्म के प्रकाण्ड विद्वान् माने जाते थे और भोलीभाली जनता पर अपना रंग जमा सकते थे। आने वाले विद्वानों में सर्वश्री पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्र मुरादाबादी, दिल्ली के पं० हरनारायण जी शास्त्री वाणीभूषण, पं० नन्दकिशोरजी शुक्ल और सुप्रसिद्ध पं० भीमसेनजी शर्मा थे—(भीमसेन जी शर्मा पहले कई वर्ष आर्यसमाज के लीडर रह चुके थे और आर्य सिद्धान्त पत्र में अपने आपको स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के शिष्य घोषित किया करते थे, एवं चूरू के सेठ माधो प्रसादजी खेमका के अग्नीष्टोम यज्ञ कराने के समय इटावा में पशुहिंसा के भावों को लेकर आर्यसमाज से हट कर सनातनी बन गये थे)।[२]

'इन विद्वानों का जब कलकता में आगमन हुआ तो यद्यपि समाज का वातावरण दूषित हो रहा था तथापि कुछ विचारशील और निष्पक्ष व्यक्तियों ने यह समझा कि अन्त्येष्टि क्रिया को लेकर जो आन्दोलन चल रहा है उसकी मीमांसा इन विद्वानों द्वारा हो जायेगी और निश्चय ही ये लोग अन्त्येष्टि क्रिया को वैदिक सनातन धर्म के अनुकुल करार देगें। परन्तु हुआ इसके विपरीत। आये हुये विद्वान् १६ संस्कारों के महत्त्व की ओर ध्यान न देकर साम्प्रदायिकता की ओर झुक गये और धनिकों के प्रभाव में आकर अन्त्येष्टि कर्म का निषेध करने लगे। उनका अखाड़ा हरिसन रोड स्थित श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय में प्रायः डेढ़ महीने तक लगता रहा। उन्होंने इसी विषय को लेकर मनमाने ढंग से बहुत अधिक प्रचार किया और समाज में इतनी कटुता बढ़ गयी कि लोगों के दिल फट गये। आश्चर्य

१. आनन्दीलाल पोद्दार समृति पुष्पी पृ० ६१-६२

२. वस्तुतः आर्यसमाज ने भीमसेनजी को पशुहिंसा के समर्थन के कारण आर्यसमाज से निकाल दिया था—लेखक

तो यह देखने में आया कि इन विद्वानों ने सनातनधर्म के १६ संस्कारों की ओर दृष्टिपात भी नहीं किया और साधारण साम्प्रदायिकता को महत्त्व देकर विरोध ही बढ़ाते रहे। हमारी तो यह धारणा है कि यदि ये विद्वान् साम्प्रदायिक भावना और झगड़े को प्रोत्साहन न देकर सिद्धान्त पर ध्यान देते तो अन्त्येष्टि कर्म की मीमांसा हो जाती साथ ही समाज का बढ़ता वैमनस्य भी दब जाता।'

यह तो श्री मोदीजी के इतिहास से लम्बा उद्धरण है। श्री मोदीजी ने इसे अपने दृष्टिविन्दु से देखा है। हम इस घटना को आर्यसमाज कलकत्ता के इतिहास के सन्दर्भ में एक और ही दृष्टि से देखते हैं। श्री जयनारायण जी अपने चरित्र और सिद्धांत में लौहपुरुष थे। उनके झुकने का अर्थ होता था एक सिद्धान्त का झुकना। उन्होंने कट्टरता से अपने सि[illegible] की रक्षा की। कहा जाता है कि मारवाड़ियों की पंचायत में जब किसी व्यक्ति ने यह कहा कि जयनारायणजी और उनके परिवार में न कोई चरित्रगत दोष है न उनमें और कोई त्रुटि है, वे अपने सिद्धान्तों के अनुसार चलते हैं तो इसमें क्या आपत्ति है। अन्ततः जयनारायणजी को कोई पंचायती दण्ड नहीं भरना पड़ा और उनके परिवार में अन्त्येष्टि संस्कार वैदिक रीति से होता चला आ रहा है। यह उस लौहपुरुष चरित्र के विजय का परम प्रमाण है। श्री जयनारायणजी के पश्चात् श्री रामचन्द्रजी, श्री दीपचन्दजी, श्रीगुरुप्रतापजी, श्री किशनलालजी, श्री आनन्दीलालजी, श्री बद्रीप्रसादजी और पोद्दार परिवार की नयी पीढ़ियाँ आर्यसमाज के साथ अपनी इस बुनियादी परम्परा को प्रसन्नतापूर्वक निभाती चल रही हैं। पोद्दार परिवार आज भी वैदिक रीति से ही अन्त्येष्टि संस्कार कराता है और मारवाड़ी समाज में उनकी प्रतिष्ठा दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है।

श्री जयनारायणजी आर्यसमाज के श्रद्धावान् परिपोषक थे। अपने देहान्त से कुछ समय पहले सं० १९७२ वि० में उन्होंने एक लाख रुपये का एक धर्मार्थ फण्ड निकाला जिससे हरिसन रोड पर एक मकान खरीदा गया। वे आर्यसमाज के प्रति ऐसी ही अखण्ड निष्ठा मृत्यु पर्यन्त रखते रहे।

श्री जयनारायणजी के जीवन से सम्बन्धित एक उद्धरण हम गुरुकुल महाविद्यालय वैद्यनाथ धाम की पंचवर्षीय रिपोर्ट से दे रहे हैं—

'कलकत्ते के माननीय सेठ श्री जयनारायणजी पोद्दार आर्यसमाज के परम भक्त, गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के प्रेमी एवं कर्मठ समाज सुधारक थे गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना में महात्मा मुँशीरामजी (स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज) को बड़ी श्रद्धा से सहायता पहुँचायी थी। श्री दयानन्द महाराज के अनन्य भक्त होने के कारण स्थान-स्थान पर गुरुकुल की स्थापना कर विद्यातीर्थ निर्माण की प्रेरणा दिया करते थे। बिहार-बंगाल के आर्यों को भी गुरुकुल खोलने की प्रेरणा एवं आशीर्वाद समय-समय पर उनसे प्राप्त होता रहा। गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के प्रति उनकी प्रगाढ़भक्ति होने के कारण ही उनके पुत्रों ने इस गुरुकुल के पौधे को जन्मकाल से ही सींचने का भार उठाया और अपने पूज्य पिताजी के चरणों का अनुसरण करते हुए इस संस्था को इस रूप में खड़ा किया। आरम्भ से ही पोद्दार परिवार ने गुरुकुल की भिन्न-भिन्न कठिनाइयों, आपदाओं और भयंकर आर्थिक परिस्थितियों में अपनी सहायता प्रदान कर संस्था को जीवित रखने के लिए समय-समय पर अमृत की घूँट दी है। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि पोद्दार परिवार ने इस संस्था को खड़ा रखने में उसके शरीर की रीढ़बनने का कार्य सम्पादित किया है।'

श्री जयनारायणजी ने गुरुकुल कांगड़ी में सं० १९७६ वि० में ५०००) दान दिया था

श्री जयनारायणजी आर्यसमाज कलकत्ता के प्रमुख कार्यकर्ताओं में रहे। आर्यसमाज कलकत्ता की भूमि को खरीदने वाले ट्रस्ट के ये ट्रस्टी थे। आर्यसमाज कलकत्ता का भवन बनाने के लिए भी इन्होंने आर्थिक सहायता की थी। श्री जयनारायणजी ने वैदिक साहित्य के प्रचार के लिए भी दान दिया था। पं० दीनबन्धुजी की सूचना के अनुसार सेठ जयनारायणजी पोद्दार ने 'पंच महायज्ञ विधि' और 'आर्याभिविनय' का बंगला अनुवाद पं० शंकरनाथजी से कराया और अपने दान से उसे प्रकाशित किया। सेठ जयनारायणजी स्वयं आर्यसमाज के लिए समर्पित थे और उनके पुत्र श्री रामचन्द्रजी, श्री दीपचन्द्रजी, तथा श्री गुरुप्रतापजी भी आर्यसमाज के लिए समर्पित जीवन ही रहे। जयनारायणजी का देहान्त वैशाख सुदी ११, १९८१ सं० को हुआ। **(आर्य समाज कलकत्ता के शतवर्षीय इतिहास से)**

आर्य समाज कलकत्ता, १९ विधान सरणी कोलकाता - ६ के लिए पं० उमाकान्त उपाध्याय, एम०ए० द्वारा प्रकाशित
तथा एशोशियेटेड आर्ट प्रिण्टर्स, ७/२, विडन रो, कोलकाता-६ में मुद्रित। मो. : ९८३०३७०४६३